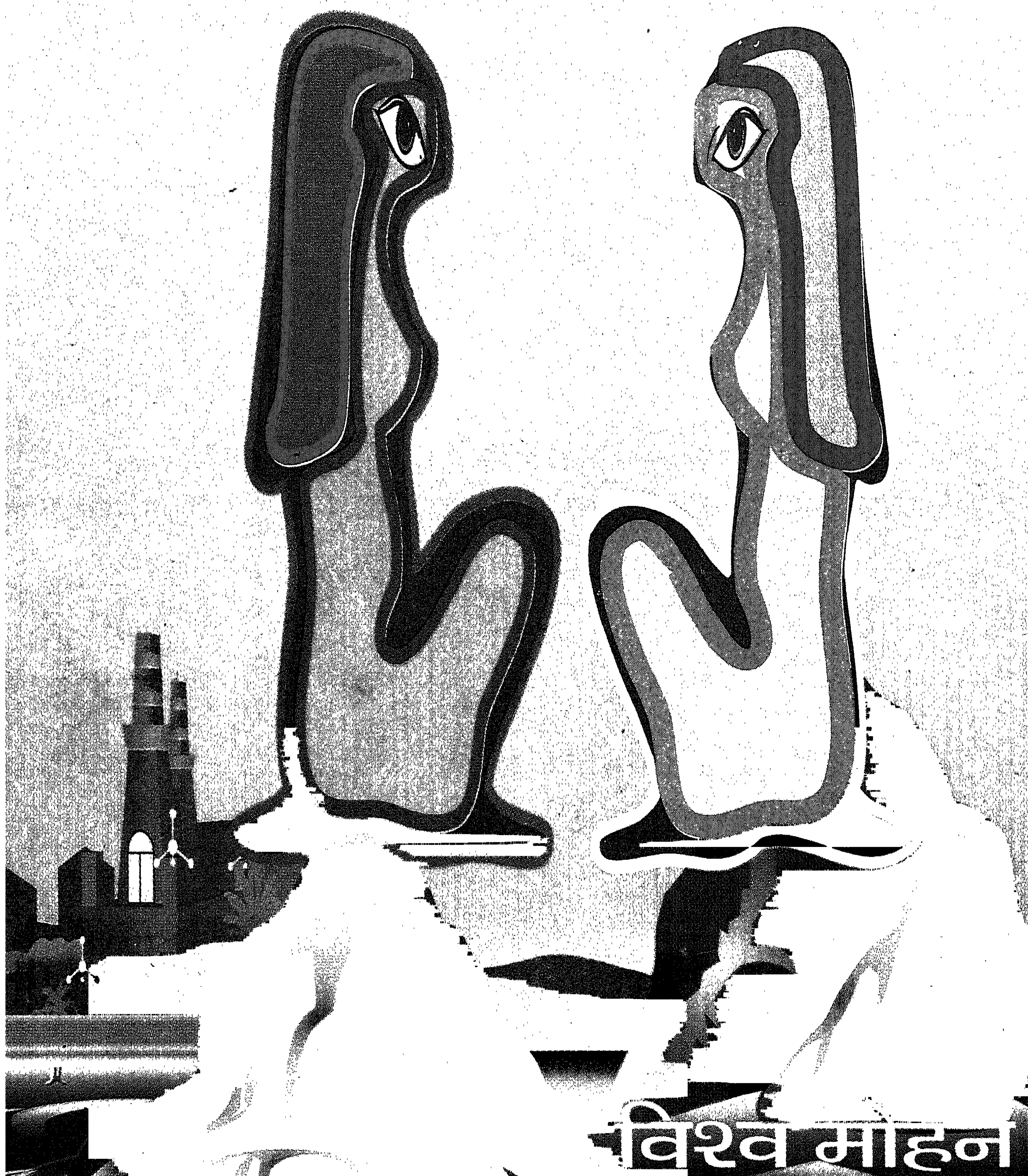
खजुराहो का खारा पानी



विश्व मोहन

पारस्परिक अंतः निर्भरता से संबंधों में कर्त्तव्य और प्रेम की भावना आती है और यही बड़े फलक पर विकसित होकर अहैतुक मानवीय करुणा का रूप लेकर संस्कृति, सभ्यता और विश्व–बंधुत्व की नींव रखती है। इस मानवीय करुणा के अभाव में यह सृष्टि बन ही नहीं सकती थी और इसके अभाव में बच भी नहीं सकेगी। संवेदनशील व्यक्ति, विचारक और लेखक की यही सर्वप्रथम चिंता है।

'लोक' पर 'तंत्र' की सत्ता लोलुपता हावी हो गई है, अर्थव्यवस्था का लक्ष्य अधिकाधिक लाभ अर्जन हो गया है, धर्म कर्त्तव्य का पर्याय न रहकर, राजनीति कर रहा है। मानव–संबंधों को प्रभावित करने वाले तीनों घटक–शासन तंत्र, अर्थव्यवस्था और धर्म निष्क्रिय ही नहीं विकृत हो गए हैं। पारिवारिक संबंधों का आधार भी स्वार्थ–सिद्धि हो गया है। यह दौर दिन–प्रतिदिन तूफ़ानी होता जा रहा है। इस तूफ़ान में भयभीत मानवीय संबंधों की चिंता और तज्जनित करुणा से ओतप्रोत है विश्व मोहन की प्रस्तुत कहानियाँ।

इससे पूर्व के तीन कथा संकलनों कीतरह 'खुजराहो का खारा पानी' में भी उनकी यही प्रतिबद्धता प्रकट हुई है। वे सहज भाव से अपनी बात कहते चलते हैं। इसलिए कहीं–कहीं आनेवाला आंचलिक भाषायी प्रभाव उसे एक भिन्न अदा प्रदान करता है और विश्वसनीयता भी।

श्री विश्व मोहन तीन दशकों से लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। अतः तीन दशकों की सभी आशाएँ निराशाएँ उनकी कहानियों में स्पष्ट झलकती हैं। विश्वास है, उनकी कहानियाँ लोक–मन को छुएंगी।

–रमेश जोशी
केंद्रीय विद्यालय नं–1
दिल्ली कैंट-110010

खजुराहो का खारा पानी

(प्रेम कहानियों का संग्रह)

खजुराहो का खारा पानी

(प्रेम कहानियों का संग्रह)

विश्वमोहन

ममता प्रकाशन, दिल्ली-51

पारस्परिक
प्रेम की भाव
विकसित हो
लेकर संस्कृ
रखती है।
सृष्टि बन ही
बच भी नहीं
और लेखक

'लोक' पर
है, अर्थव्यवस
हो गया है,
राजनीति क
करने वाले
और धर्म
पारिवारिक
गया है। यह
रहा है। इस
चिंता और
मोहन की प्र

इससे पूर्व के
का खारा
प्रकट हुई है
चलते हैं। इ
भाषायी प्रभाव
और विश्वस

श्री विश्व मो
सक्रिय हैं।
निराशाएँ उन
विश्वास है, उ

प्रकाशक : ममता प्रकाशन
5/257, गली नं. 5, वेस्ट कान्ति नगर
दिल्ली-110051

मूल्य : 125-00 रुपये

संस्करण : 2002

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, दिल्ली 110 032

"उनको
जिन्होंने ठगा, दगा, और लूटा
उनको भी
जिन्होंने तोड़ा, मरोड़ा और चूसा।"

अनुक्रम

खजुराहो का खारा पानी

सुझाव विमल का था। पसन्द मुझे भी आया था। खेती बाड़ी का मौसम समाप्त हो गया था। अब अगले डेढ़ दो महीने के लिये कृषि कार्य से अवकाश। अन्य वर्षों की भांति इस साल भी हम इस मौसम में सैलानियों की तरह कहीं बाहर घूमने जाना चाहते थे। विमल की राय थी इस साल हमें रमन के पास ही जाना चाहिये। 'कमबख्त ने शादी क्या किया, बीबी के दामन में ही इस तरह उलझ गया कि हमें भी भूल गया।'

राय मुझे भी जंच गई, 'कभी कभार पत्र भी लिख देता। कमबख्त से इतना भी नहीं होता है।'

'अरे यार अब हमें पत्र लिखने में समय क्यों बर्बाद करेगा। बीबी के ओठों को चूमने, गालों को सहलाने और पलकों को निहारने से फुरसत हो तब तो। इस बार 'सर प्राइज' अटैक करके रंगे हाथ पकड़ लो कमबख्त को।' विमल ने उत्तेजित होकर कहा। और हम पूरी तैयारी से चल पड़े।

हम तीनों यानी मैं रमन और विमल लंगोटिया यार थे। बचपन से ही साथ-साथ खेलते कूदते और पढ़ते आ रहे थे। तीनों पढ़ने में प्रतिभावान थे। मगर हमारी बीच प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी क्योंकि तीनों अलग-अलग शाखाओं में बंटे थे। मैं मेडिकल में था, विमल कृषि में था और रमन इंजीनियरिंग में। तीनों अव्वल दर्जे के आदर्शवादी थे और एक ही सपना देखा करते थे—'सुसभ्य सुशिक्षित नागरिक बनकर देश की, समाज की सेवा करने का।' रमन का कहना था, 'यह औद्योगिक युग है। उद्योग धंधे के विकास पर ही राष्ट्र की उन्नति निर्भर करती है। उद्योग धंधे तकनीकी जानकारी से चलते हैं। मैं तकनीकी विकास

कर देश की सेवा करूंगा।' विमल का तर्क था, 'भूखे भजन न होई आदमी की पहली जरूरत रोटी है। इसलिये देश तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक हम अनाज के मामले में आत्मनिर्भर न बनें। मैं आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से खेती कर अनाज के मामले में देश को आत्मनिर्भर बनने की प्रक्रिया में सहयोग दूंगा।'

और मेरा दावा था, 'जनता का स्वास्थ्य ही राष्ट्र के विकास की कुंजी है। जब तक जनता रुग्ण रहेगी, बीमारियों से ग्रस्त रहेगी, देश के विकास की गति धीमी ही रहेगी। अतएव यहां के लोग स्वस्थ एवं सबल रहें, ऐसी ही चिकित्सा कर मैं देश सेवा करूंगा।'

अपना यह दावा हम बार बार दोहराया करते थे। कभी-कभी इस बात पर उलझ भी जाते थे कि मेरा ही दावा सबसे सशक्त है। लेकिन स्कूल से कॉलेज पहुंचते-पहुंचते एक और बात हमारे बीच चर्चा का विषय बन गयी—वह थी लड़कियों की बात। जिस रात हम पिक्चर देखकर आते उस रात देर तक लड़कियों की ही बातें करते रहते, भावी जीवन साथी की कल्पना किया करते। हम दोनों तो नार्मल ही थे मगर रमन बिल्कुल एबनार्मल की स्थिति में पहुंच गया था। किसी सुन्दर लड़की पर नजर पड़ते ही उसके मुंह से लार टपकने लगता, 'काश! यही लड़की पहले मेरी प्रेमिका और बाद में पत्नी बन जाती।' वह बराबर कहा करता था, 'इस समाज में इस परिवेश में कुछ भी ढंग का या मनोनुकुल नहीं मिलता—न अपनी पसन्द की नौकरी, न अपनी पसन्द का घर। जीने के लिये आज हर जगह सामंजस्य और समझौता ही करना पड़ता है। हमारे इर्द गिर्द हर चीज कुरूप और विकृत-सा है। इस स्थिति में अगर पत्नी भी सुन्दर और मनोनुकुल नहीं हुई तो जीवन भार सा ही लगेगा। जानते हो यार सुन्दर पत्नी भी जीवन की बहुत बड़ी पूंजी होती है।' यह बात वह इतनी बार दोहराया करता था कि हमें लगता कि वह किसी मानसिक ग्रंथि का शिकार हो गया है। अतएव हम बार-बार ढांढस बंधाया करते थे,—'अरे यार तू जैसा सोचता है, वैसी ही लड़की तुम्हें मिलेगी। भला तुझमें कमी ही क्या है? इतना सौम्य सुन्दर और शालीन व्यक्तित्व—इंजीनियरिंग की डिग्री! आज तो सारी सुन्दर लड़कियां इंजीनियर

और डॉक्टर के लिये ही लालायित रहती हैं। हमारी भाभी राजकुमारी क्या रूप की परी होगी।' यह कहकर हम उसे गुदगुदा दिया करते थे।

इस बीच हम तीनों डिग्री लेकर अपने-अपने कॉलेज से निकल चुके थे। मुझे एक नर्स से प्रेम हो गया था। परिवार के सदस्यों की इच्छा के प्रतिकूल, सामाजिक नियमों का उल्लंघन कर बगैर किसी लेन देन के मैंने नर्स से ही शादी कर ली थी और गांव में ही प्रैक्टिस करने लगा था। यों गांव में जीवन जीने की अन्य सुविधायें अप्राप्य थीं, आमदनी का जरिया भी सीमित ही था, किंतु फिर भी गुजारे लायक आमदनी हो ही जाती थी। मेरी नर्स पत्नी रमा भी मेरे कार्य में हाथ बंटाती और हम वास्तव में एक दूसरे से प्रेम करते थे, इसलिये खुश थे, संतुष्ट थे।

विमल की भी शादी पिताजी के ढाले गये सांचे में परम्परागत रीति से हो गई। नौकरी के चक्कर में न पड़कर वह भी गांव में ही रुक गया था। आधुनिक ढंग से खेती करने में अथक परिश्रम करता था। यों तो पत्नी विभा मर्यादित ढंग से ही उसके काम में सहयोग दे पाती—फिर भी वह खुश था—बचपन में जो सपना देखा करता था, उसे साकार करने का मौका मिल गया था।

किंतु डिग्री लेने के दो साल तक रमन को कोई नौकरी नहीं मिली और नौकरी नहीं मिली तो शादी कैसे होती। दो साल की बेकारी ने उसके तन मन को तोड़कर जर्जर कर दिया था। उसे इस हालत में देखकर हमें बहुत तकलीफ होती थी। मगर हमसे ज्यादा तकलीफ तो विभा और रमा को होती थी अपने चहेते मुंहबोले मन लग्गू देवर की यह हालत देखकर। उनकी राय थी, 'रमन भैया भी गांव में ही कोई कारखाना क्यों नहीं खोल लेते।' किंतु इस पिछड़े गांव में जहां बिजली भी नहीं यह सर्वथानामुमकिन था। नौकरी के चक्कर में वह अधिकतर राजधानी में ही रहने लगा था। जब गांव आता तो हमारे बीच इस तरह घुल मिल जाता, रमा, विभा के छेड़छाड़ में इस तरह खो जाता कि उसका पुनः शहर लौटना हमें खलता ही—लेकिन रमा और विभा तो बहुत दुखी हो जाती और यह कबूल करवा कर 'फिर कब लौटेंगे'—तभी जाने देती।

शादी से पहले उसका खत तो बराबर आता ही रहता था। एक दिन संक्षिप्त सा खत आया कि नौकरी मिल गई। यह सूचना सुनकर ही हमारी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। इतने साल की बेकारी के बाद नौकरी! भला खुशी क्यों नहीं होती। हमसे ज्यादा खुशी रमा और विभा को हुई। रमा ने उस खुशी में लड्डू बांटे, विभा ने तुलसी चौड़ा में दीप जलाया और तार देकर आये ही थे कि एक और संक्षिप्त सा खत आ गया, 'शादी भी हो गई—एक चीफ इंजीनियर की बेटी से जिसकी बदौलत यह नौकरी मुझे मिल पायी। शादी इतनी जल्दीबाजी और ऐसी परिस्थिति में हो गई कि किसी को खबर भी नहीं कर सका। अन्यथा मत लेना।'

'चीफ इंजीनियर की बेटी है। सुन्दर और सुरुचि संपन्न तो होगी ही। देर से भली मगर मिली अपनी इच्छा के मुताबिक। क्या सही जगह तीर मारा कम्बख्त ने।' विमल का तर्क था।

इस बात का हमें उतना दुख नहीं था कि हम उसकी शादी में शरीक नहीं हो सके जितना कि इस बात से खुशी कि एक साथ अच्छी नौकरी और अच्छी छोकरी दोनों चीजें मिल गई। हमने शुभकामना का तार फिर दाग दिया। उसके बाद एक आग्रह भरा खत भी, 'चीफ इंजीनियर की बेटी से शादी हुई है। इसलिये छुट्टी मिलने में कोई झंझट नहीं होगा। भाभी को लेकर कुछ दिनों के लिये यहीं चले आओ। अपने बीच तुम्हें पाकर हमें अपार खुशी होगी। कितना सुहावना और मनोभावन वह क्षण होगा जब हम तीनों साथ-साथ होंगे अपनी अपनी बीबियों के साथ! उस क्षण की कल्पना करके हम आत्म विभोर हो जाते हैं।' रमा विभा ने आने के पीछे एक और तर्क जोड़ दिया, 'अभी तुम बच्चे हो, कच्चे हो। यह भी न पता होगा कि गुल्लर क्या होता है, बेर क्या होता है। यहां आ जाओ तो सब कुछ बता दूंगी—नहीं तो हाथ ही मलते रह जाओगे। यह सब अनुभव की बातें हैं—'थ्योरी ऑफ स्ट्रकचर' नहीं, रट लिया और परीक्षा पास हो गये।'

लेकिन हमारे खत का कोई जवाब नहीं आया। हमने सोच लिया हनीमून मनाने ऊटी या कश्मीर चला गया होगा। अगर बाहर न भी

गया तो नयी नवेली हसीनी बीबी क्या कश्मीर की घाटी से कम आकर्षक होती है? अभी तो बीबी की हसीन वादियों में ही इस तरह खो गया होगा कि कुछ और सूझता ही नहीं होगा।'

दो महीने बीत गये। उसका कोई जवाब नहीं आया। बीच में जब तब हम खत लिखने बैठते तो रमा विभा छिड़क बैठती, 'रमन का सुख तुमसे नहीं देखा जा रहा। खत लिखकर क्यों बेचारे को डिस्टर्ब कर रहे हो?'

दो महीने बाद पुनः खत लिख बैठा—कोई जवाब नहीं। विमल ने व्यंग्य मारा, 'अभी नशा नहीं उतरा होगा।'

इसके दो महीने बाद फिर खत लिख दिया—कोई उत्तर नहीं। विमल कहता, 'अभी नशा नहीं उतरा होगा' विभा कहती, 'अब रमन भैया बदल गये मालूम होते हैं।' लेकिन रमा को अंदेशा था—'कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं हो गया। आजकल के जीवन में कब क्या घट जाये इसका क्या भरोसा?'

मगर उसके घरवालों से हम पता लगा बैठे थे कि वह ठीक ठाक है, इसी पते पर है जिस पते पर हम पत्र लिख रहे थे।

इतना प्यारा और लंगोटिया यार शादी होते ही इस तरह बदल जायेगा—हमारी चेतना को कतई कबूल नहीं था।

तीज त्योहार के दिन जब रमा और विभा मिलकर खाना बनातीं और हम साथ खाना खाने बैठते तो यह कचोट होती—काश! रमन भी यहीं होता। उसकी बीबी भी होती। या चांदनी रात में अमराइयों में हम घूमने जाते, पोखर के किनारे बैठकर बातें करते रहते—रमन का अभाव महसूस होता ही। हम यही सोचा करते थे—अब कोई ऐसा मौका आये जब हम तीनों पुनः साथ रहें और उस क्षण को जी भर कर जीयें। मगर रमन ऐसा निकला कि पत्र का जवाब भी नदारथ...

करीब एक वर्ष बीत गया। उसने न खत लिखा और न आया। उसके इस व्यवहार से हम इतने टूट गये थे कि केवल उसकी याद कर संतुष्ट हो लेते थे। मैं भी अपनी प्रैक्टिस जमाने में लगा था और विमल भी अधिक अन्न उपजाने के चक्कर में। इसलिये घर से हजारों

मील दूर उससे मिलने जाने की फुर्सत ही कहां थी। तभी विमल के लड़के का मुण्डन संस्कार आ धमका। नवीन ही हम तीनों के बीच प्रथम पुष्प था अतएव उसके मुण्डन संस्कार में हम तीनों सपत्नीक उपस्थित हों—यह हमारी मनोभिलाषा थी। हमने सोचा अच्छा मौका मिला। स्वेच्छा से तो रमन आने से रहा। अब अगर हमारी दोस्ती का जरा भी ख्याल होगा तो वह इसमें जरूर आयेगा। लेकिन इस खत का भी कोई जवाब नहीं। सोचा संभव है डाक की गड़बड़ी के कारण पत्र ही न मिला हो! इसलिये बीबी के साथ आने का विशेष आग्रह करते हुए पंजीकृत डाक से एक और खत भेज दिया। भाभी को देखने की, भेंट मुलाकात करने की दुर्दम्य आकांक्षा तो थी ही। खुशी हुई कि पंजीकृत पत्र पहुंच गया और हमारे लिये एक जवाब भी ले आया। मगर जवाब क्या महज औपचारिकता, 'बहुत खुशी हुई। आने की कोशिश करूंगा। किंतु अवकाश का अभाव रहता है। अतएव अगर न आ सका तो अन्यथा मत लेना। मेरी शुभकामनायें हमेशा तुम लोगों के साथ रहेगी।' ऐसा रुखा सूखा पत्र पाकर कुछ तकलीफ भी हुई।

कमबख्त आया भी तो मुण्डन के दिन—मुण्डन से ठीक एक घंटा पहले, वह भी अकेले। भाभी को वहीं छोड़ आया। बड़ी कोफ्त हुई। विमल ने व्यंग्य मारा 'शीशे के ग्लोब में ढंक कर रखने वाली बीबी को इतनी दूर ले आता तो पहले ट्रेन की यात्रा के इंजन के कोयले पड़ते, यहां की धूल पड़ती तो उसका चाम गंदा नहीं हो जाता। फिर यहां हम सब पैनी निगाहों से देखते परखते तो वह मलिन नहीं हो जाती।' विमल के व्यंग्य बाण पर विभा रमा मुस्करायीं, मैं भी हंस उठा। किंतु वह न हंसा न मुस्कुराया अपितु उसके चेहरे पर बादल सा छा गया। बोला, 'यार सात महीने पूरे हो चुके हैं। आठवां चढ़ने को है। तब इतने दूर की सफर उसके लिये अच्छा नहीं होता।' वह ऐसे बोला जैसे व्यंग्य की चोट खाकर छटपटा गया हो। फिर तो हमारी नाराजगी का पारा थर्मामीटर के पारे की तरह झटके से उतर गया। नाराजगी के बादल से ही अचानक खुशी की वर्षा होने लगी। विभा उसे गुदगुदाने लगी, 'इतने बेसब्र थे कि सालभर न पूरा होने दिया?'

विमल बोला, 'इस मुण्डन के अवसर पर हम नहीं मिल पाये। मगर निकट भविष्य में ही एक और मुण्डन के अवसर का जन्म देकर इस क्षति की पूर्ति हो गई है।'

रमा की चिन्ता कुछ और थी, 'तब तुम्हें उसे अकेला नहीं छोड़ना चाहिये था। साफ-साफ लिख देते अगर यह बात थी तो।'

हम तो खूब खिलखिलाये। यों खिल खिलाया तो रमन भी। परन्तु उसकी हंसी में वह जिन्दादिली नहीं रह गई थी। लगता कि वह अब हंसने मुस्कुराने का प्रयासभर कर रहा है। टूट तो वह बेकारी के दिनों में ही गया था, किंतु बोलने चालने की मस्ती, हंसने मुस्कुराने की जिन्दादिली तब भी कायम थी। हम सोचते थे कि वर्षों की बेकारी के बाद अच्छी नौकरी और पत्नी पाकर वह उससे उबर जायेगा। चेहरे पर ह्रास उल्लास गायब हो गया था और उसकी जगह ले लिया था दार्शनिक जैसा गंभीर और मग्न चेहरा ने। रमा के पीछे बहकने, विभा के पीछे फुदकने, पग पग पर छेड़खानी कर बैठना, बात बात पर गुदगुदा देने वाला मजाक करना उसकी ये सब आदतें अतीत की बातें हो गई लगतीं। विभा की शिकायत भी थी, 'रमन अब हमसे बातें भी नहीं करते।'

रमा ने नहले पर दहला फेंका 'अब अपनी बीबी आ गई तो हमें कौन पूछता है।'

रमन मुस्कुरा कर रह गया। कुछ जवाब नहीं दे पाया। मैं ताज्जुब में था कि ईंट का जवाब पत्थर से देने वाला रमन चुप क्यों रह जाता।

फिर भी रमा बराबर उससे पूछती रहती थी, 'सब कुछ ठीक है न? कोई विशेष तकलीफ तो नहीं है?' और जाते वक्त रमा यह प्रस्ताव भी कर गई 'पहला मौका है। परिवार में कोई बुजुर्ग औरत भी नहीं। महीने डेढ़ महीने के लिये कहो तो मैं आ जाऊं, संभाल लूंगी सब कुछ।'

रमन बोला, 'अच्छा, जैसी परिस्थिति होगी वैसा लिख दूंगा।'

रमा की इतनी आत्मीयता मुझे अच्छी लग रही थी किंतु रमन की आवाज इतनी शिथिल थी कि मुझे लगा कि रमा के प्रस्ताव में उसे कोई रुचि नहीं है। वह टरकाने की कोशिश कर रहा है।

लेकिन वह गया तो सकुशल पहुंचने तक की चिट्ठी नहीं लिख

पाया। बोल गया था बीस मार्च तक डेलीवरी हो जायेगी। हम लोग खुशखबरी की प्रतीक्षा हर रोज हर डाक से किया करते थे। मगर बीस मार्च के बजाय बीस अप्रैल भी बीत गया। कोई खबर नहीं। खींझकर हमने एक उलाहना भरा पत्र लिख दिया। गनीमत थी कि उसका जवाब आ गया, खत पढ़कर तो हम मुर्दास्त हो गये। लिखा था बच्चा पेट में ही खराब हो गया था। हम बड़े दुखी हुए। शोक और सांत्वना के शब्दों से ओत-प्रोत एक पत्र रमन के नाम लिखा और कुछ पंक्तियां रमा की इच्छानुसार, 'प्रसव पीड़ा से ही नारी का तन-मन टूट जाता है और इसी पीड़ा से प्रसूत पुष्प अगर मुरझा जाये तो तन मन और भी टूटकर चकनाचूर हो जाता है। वैसे भी मातृत्व की पहली चोट को झेलना असहनीय होता है। वह वहां वैसे भी अकेली है। अतएव बेहतर है कि कुछ दिनों के लिये यहीं चले आओ। स्थान परिवर्तन के साथ-साथ हवा परिवर्तन भी हो जायेगा, हमारे बीच रहकर उसका भी मन बहल जायेगा।' लेकिन रमन तो शायद पत्र न लिखने की शपथ खा बैठा था।

× × ×

जिस समय हम उसके डेरे पर पहुंचे, दिन ढल चुका था, शाम पहली सीढ़ी पर चढ़ चुकी थी। हमें पूरी उम्मीद थी इस समय रमन घर ही होगा और बीबी से गुफ्तगू में लीन होगा। अतएव बहुत ही नहु नहु दरवाजे तक आये, धीरे से परदा सरका कर देखा रमन चाय में चीनी डाल रहा था। लुंगी बनियान में लिपटा। वह धुंए सा सूरत बनाये हुए था। हम एक बारगी आगे बढ़ गये। हमें आये देखकर रमन इस तरह चौंका कि उसके हाथ से चायभरा प्याला गिरकर चूर चूर हो गया। वह खुशी से गले मिला। लेकिन तुरंत ही उसके चेहरे पर विषाद का बादल मंडरा उठा। अपनी हंसी से वह उसे छिपाने की कोशिश करने लगा, किंतु छिपा न सका और चाय बनाने के बहाने किचेन में घुस गया। बड़ा अटपटा सा लगा उसका ऐसा व्यवहार। विमल उसे किचेन से घसीटकर ले आया, 'अरे यार इतने दिन बाद मिले हैं तो चाय ही पियेंगे? पहले यह तो बता भाभी को कौन से शोकेस में छिपाकर रखा है? अभी भी नहीं दिखाने का इरादा है क्या?'

मैंने कमरे का मुआयना किया। वह शायद बैठक था। कमरे की सूरत बिगड़ी हुई थी। सभी चीजें बेतरतीब ढंग से बिखरी पड़ी थी। मेज पर कई जासूसी सस्ती रोमाण्टिक किस्म की किताबों के पन्ने उलटे पुलटे पड़े थे। ताज्जुब हुआ कि रमन ऐसी फुटपाथी किताबें कब से पढ़ने लगा। किंतु हम कोई प्रश्न पूछते वह इससे पहले ही वह किताबें समेटने लगा। कमरे की सूरत देखकर तो यही लगा कि भाभी आसपास ही कहीं गयी होंगी। विमल पूछ बैठा, 'तू बड़ा अन्तर्यामी है। समझ गया होगा कि हम आ रहे है इसलिये भाभी को मायके भेज दिया।'

शायद हमारे प्रश्न से वह क्षेंपना चाहता था इसलिये फिर किचन की ओर मुंह करते बोला, 'यार थक कर आये हो, पहले एक कप चाय तो पी लो।'

मुझे ताज्जुब हो रहा था इतनी देर हो गई रमन भाभी के बारे में क्यों नहीं कुछ बोल रहा।

विमल उसे फिर किचेन से घसीट लाया 'भाभी कहां है?'

'यार पिक्चर गई है आने वाली होगी।'

विमल ने माथा ठोका, 'तुमने तो हमारा माइण्ड ही अपसेट कर दिया था। अब तो आशा बंधी कि प्यारी प्यारी भाभी से मधुर मिलन होगा।'

विमल ने गुदगुदाते हुए कहा। मेरे मुंह से निकल गया, 'वह अकेली! तुम पिक्चर नहीं गये? पिक्चर देखना तो तुम्हारी हॉबी थी।' 'यार न जाने क्यों मुझे पिक्चर से चिढ़ सी होने लगी है। कभी कभार सोचता हूं अगर कॉलेज के दिनों में पिक्चर न देखता तो आज कितने अच्छे होते।'

वह क्या कहना चाहता था उस समय समझ नहीं सका। अब समझ रहा हूं। थोड़ी देर बाद ही ऊंची एड़ी की सैंडिल पहनी ऊपर से नीचे तक मेकअप एवं अभिजात्य के अहं में डूबी एक नारी हमारे सामने से गुजर गई। हमने सोचा कोई और होगी...

वही औरत फिर आई और हमारे सामने तन कर खड़ी होती हुई बोली 'नमस्ते।'

हमें भी प्रत्युत्तर देना ही पड़ा। आंचल को ठीक करती हुई बोली, 'आपही के लड़के मुण्डन संस्कार में रमन गया था।'

हम जैसे आसमान से गिर पड़े हों। क्या यही वह भाभी है जिसकी खूबसूरती की हम कल्पना किया करते थे जिसकी कलात्मक भाव भंगिमा कवितामय व्यवहार की हम इतनी चर्चा किया करते थे। जो अगर कुरूप नहीं तो सुन्दर भी किसी कोण से नहीं लग रही थी। उमर भी रमन से ज्यादा ही...

स्वयं को किसी तरह संतुलित कर मैंने कहा, 'बड़ी तकलीफ हुई थी आपके मातृत्व की चोट भरी खबर सुनकर। हमने तो पत्र भी लिखा था, किंतु आपने तो कोई जवाब ही नहीं दिया।'

मैं क्या कह गया। वह चौंक सी गई। मखैलिया विमल ने छेड़ते हुए कहा, 'भाभीजी कोई बात नहीं। फिर ट्राई कीजिये।' विमल की यह आदत हमें अच्छी भी लगती है कभी-कभी खलती भी है। वह हर सीरियस बात को बतौर मजाक उड़ा लेता है।

वह एक बारगी पीछे मुड़ गई और फिर नहीं आयी। हमें लगा कि विमल की बात का वह बुरा मान गयी। इसमें बुरा मानने की क्या बात थी। रमन भी हमारे पास बैठकर बातें करने से कतराता रहा। पांच दस मिनट पर आता कुछ पूछ कर फिर चला जाता। बड़ा अजीब सा लग रहा था वह वातावरण। लग रहा था कि हम अपने उस दोस्त के पास नहीं आये हैं जो हमारा लंगोटिया यार था, जिसे हम इतना प्यारा और नजदीक समझते आ रहे थे, उस भाभी के पास भी हम नहीं आये थे जिसके बारे में कितने सपने कितनी कल्पना, कितनी तमन्ना मन में थी। हम तो सही सोचते थे कि जिस तरह रमन को पाकर रमा विभा चहक उठती, रमन भी उनके साथ बिल्कुल घुल मिल जाता, उसी तरह हमें पाकर रमन भाभी भी चहक उठेगी। हम भी उसके साथ चन्द मिनटों में इस तरह घुल मिल जायेंगे कि लगेगा कि हम वर्षों से एक दूसरे के नजदीक रहे हैं। कहां ऐसा दमघोंटू वातावरण...ऐसा अनुभव है कि हम मेहमान हैं जिनकी खातिरदारी उन्हें ठीक ढंग से करनी है। यही अनुभव...

खाना खाकर हम बैठक में ही सो गये थे। अभी तक जो कुछ देख पाया था, जो कुछ महसूस कर पाया था वह इतना अप्रत्याशित था कि आंखों में नींद कहां। हम एक ही प्रकार के तीखे संसार से गुजर रहे थे, एक दूसरे से कुछ कह भी नहीं सकते थे, खुलकर बात भी नहीं कर सकते थे—बगल में ही रमन का शयनकक्ष था। संभव है वह भी जगा ही हो। तभी रमन के कमरे से गुस्से से भरी आवाज आने लगी और बीच-बीच में रमन की रुंआसी आवाज भी, 'अभी चुप तो रहो, स्थिर से बोलो वे क्या समझेंगे?'

'जो समझना हो समझें लेकिन मैं पूछती हूं तुमने यह खबर क्यों उड़ाई कि मैं मां बनने वाली थी और बच्चा पेट में ही खराब हो गया।'

'रानी, तुम समझती क्यों न हो? और मैं क्या बहाना बनाता। तुम जाने के लिये तैयार नहीं थी।'

'तुमने कभी कहा भी। सच तो यह है कि तुम मुझे कहीं ले जाना नहीं चाहते। न जाने क्यों मेरे साथ आने जाने में तुम्हें क्या परेशानी होती है?'

रमन के बार-बार अनुनय विनय करने के बाद भी भाभी की आवाज में कर्कशता बढ़ती जा रही थी। हम उसे बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। मगर उसकी उपेक्षा भी तो नहीं कर सकते। आंखे थीं जो बन्द नहीं हो पा रही थी, कान थे तो जो बन्द नहीं हो पा रहे थे। न जाने भाभी की कर्कशता एक बारगी कैसे गुम हो गई। फिर धीरे से फुसुर-फुसुर की आवाज आने लगी। रमन कह रहा था—'तुम भी एक पेग ले लो।' विमल ने चिहुटी काटा, 'अभी तो झगड़ा और अभी...।'

और रात भर हम छटपटाते रहे। सुबह की प्रतीक्षा करते रहे। छटपटाहट के बीच ही रमा विभा ने फुसफुसाया था—'खजुराहो का पानी खारा है। हमें यहां और नहीं टिकना चाहिये।'

तड़के उठकर हाथ मुंह धोकर हम तैयार हो गये। अपना सामान ठीक करने लगे। सामान ठीक करके बैठे ही थे कि लुंगी बांधते हुए रमन आ टपका। हम कह बैठे, 'अब चलने दो यार। इस बार हमारा प्रोग्राम काफी 'टाइट' है। भाभी को लेकर गांव आओ न। सब तुम्हारा

इन्तजार कर रहे हैं।'

रमन का चेहरा कातर सा हो गया, 'इतनी जल्दी चले जाओगे?

'हां यार क्या करें जाने की इच्छा तो नहीं होती, किन्तु समय का अभाव है। भेंट मुलाकात हो गई। बस!' हमारी बोली भी काफ बनावटी थी। न रमन ने एक बार भी रुकने के लिये कहा और फिर आने का आग्रह ही किया। भाभी को बुलाने अंदर चला गया आंखें मलती हुई भाभी आई, 'अभी आप लोग चल दिये? फिर कब आईयेगा? आईये फिर कभी?'

लगा भाभी के आग्रह में भी मात्र औपचारिकता थी, कोई आत्मीयता नहीं। बैग लटकाये हम घर से बाहर निकल आये। भाभी दरवाजे प खड़ी आंख मलती रही। रमन आगे बढ़कर गेट तक आया। पीछे मुड़क देखा तो रमन की आंखें डबडबा गई थीं।

हम तेजी से स्टेशन की ओर चलने लगे। रास्ते भर सोचते र स्टेशन तक साथ आने में भी रमन कतराया क्यों?

महका महुआ मरुभूमि में

असमय कॉलबेल बज उठा तो मुझे गुस्सा भी हुआ। क्यों काल बेल लगाकर एक नयी आफत मोल ले ली है? हर समय टन टन टन। उनसे कई बार कह चुकी हूं कि यह कबाड़ियों का मुहल्ला है। यहां काल बेल रखना सरासर बेवकूफी। दिनभर गली के आवारा बच्चे कारण-अकारण टन टन टन करते दिमाग खराब किये रहते हैं।

पहली बार जब कॉलबेल बजा तो मैंने उसे अनसुनी कर दिया। लेकिन कुछ ही क्षणों बाद जब फिर टन टन टन की आवाज हुई तो मैं उसे अनसुना नहीं कर सकी। झुंझलाहट भी हुई बेवजह आने वाले पर। मगर दरवाजा खुलते ही कान में आवाज आई 'नमस्ते' और नमस्ते इस लहजे में कहा गया था कि मेरी सारी झुंझलाहट क्षण भर में ही मिट गई। उस समय रात के आठ बज रहे थे और गली की बत्ती गुम थी। अंधेरे में साफ साफ दिखाई नहीं दे रहा था—लेकिन इस एक मात्र शब्द 'नमस्ते' में इतनी मिठास थी कि मुझे पक्का विश्वास हो गया कि यह किसी लड़की की आवाज है। पुरुषों की आवाज कितनी भी हल्की क्यों न हो उनमें ऐसी मिठास नहीं आ सकती। मेरे इस विश्वास के पीछे सबूत भी साफ था। उस धुंधलके में गेट के बाहर जो आकृति दिखाई दे रही थी उसकी रूपरेखा ऐसी ही थी। लम्बे-लम्बे बाल बेल बाटम टाइप पैंट के ऊपर गहरे लाल रंग का कुरता जिसके ऊपर शायद जहां तहां तिरंगे झण्डे जैसी छाप छाप दी गई थी। लेकिन जब आकृति गेट खोलकर मेरे और पास सरक आई और बड़े अदब से कहा, 'माफ कीजियेगा क्या मैं आपका कुछ वक्त जाया कर सकता हूं?' तो मैं चौंक सी गई यह तो एक पुरुष की आवाज थी। मेरे इस चौकने को वह

शायद न भांप सका और मैं भी कुछ जवाब नहीं दे सकी।

उसने मेरी ओर गहरी निगाहों से देखा और उसकी नजरों का तीखापन मेरे अन्दर गहरे तक पैठ गयी।

'क्या आपके पास कोई कमरा खाली है?'

'खाली तो जरूर है।'

'क्या आप दिखाने की इनायत कर सकती हैं?'

'क्यों नहीं?' इसके अतिरिक्त मैं उत्तर भी क्या देती? वैसे लग सकता है कि उसका उपरोक्त वाक्य बिल्कुल चालू और सस्ता था। परंच उसके बोलने का एक खास अंदाज था, जो यह बताने के लिये काफी था कि वह एक अच्छा पढ़ा लिखा सुसंस्कृत एवं सुसभ्य व्यक्ति है। कोई और होता तो मैं उसे टाल देती, झिड़क देती, 'यह भी कोई समय है मकान तलाश करने का।' मगर उसके शब्दों की मिठास, उसकी आंखों की तीव्रता और बातें करने का लहजा ही कुछ ऐसा था कि मैं उसे टाल नहीं सकी और तत्काल जीने की बत्ती जलाकर ऊपर चढ़ती हुई बोली 'आ जाईये ऊपर।'

वह 'शुक्रिया' कहते हुए मेरा अनुसरण करता ऊपर चढ़ गया।

कमरा उसे पसन्द आ गया था और किराया भी जंच गया था। उसने जेब से रुपये निकालते हुए मेरी ओर बढ़कर कहा था 'यह लीजिये एडवांस'। कल सवेरे मैं आ जाऊंगा।'

और मैं रुपये थामती हुई बोली थी, 'चाय तो पी लीजिये।'

'ओह! थैंक्यू'। अब तो आपके पास आ ही रहा हूं। फिर कभी पी लूंगा।'

'देर नहीं लगेगी। दरअसल मैं आपके आने के पहले चाय का पानी ही गर्म कर रही थी।'

'ऐसी कोई जरूरत नहीं थी'—और अप्रत्यक्ष ढंग से अपनी सहमति प्रगट करते हुए उसने पिंकी को गोद में उठा लिया और पुचकारते हुए कहा, 'तू डार्लिंग बेबी है डार्लिंग बेबी' और नन्हीं पिंकी चटाचट उसे गालों पर अपना हाथ चलाने लगी, 'मैं बेबी नहीं हूं पिंकी हूं पिंकी।' वह ठहाका मारकर हंसने लगा था—'सुन रही हैं भाभीजी क्या कह रही है।'

'भाभीजी' अपने लिये भाभीजी का सम्बोधन सुनकर मैं...मेरे लिये यह सम्बोधन सर्वथा नया था। अब तक मैं किसी की बेटी थी, किसी की बहन थी, किसी की बीबी थी, किसी की मम्मी थी तो किसी की मालकिन। उसके भाभीजी के सम्बोधन ने मेरे अन्तरंग को दूर तक उछाल दिया था और इसी उछाल के आवेश में मैंने चाय में चाकलेट क्रीम डाल दिया था। ऐसी चाय मैं तभी बनाती थी जब कोई विशिष्ट अतिथि घर आते थे। उसे मैंने क्यों विशिष्ट अतिथि समझ लिया था। चाय को सिप करते हुए उसने कहा, 'अजी आप तो 'मारवेलस' चाय बना लेती हैं। ऐसी चाय तो मैंने आज तक नहीं पी।'

मैं खुशी से फूली नहीं समाई थी और इसी आवेश में यह बात भी कह गई थी कि किस तरह मेरे पापा मेरी चाय की तारीफ किया करते थे। वह बोल उठा था 'ऑफ कोर्स'। जाते वक्त उसने पिंकी को फिर गोद में उठा लिया था और उसके हाथ को हिलाते हुए विशेष अंदाज में कहा था 'टाटा टाटा'

और फिर मेरी ओर मुखातिब होकर कहा था, 'वाई वाई भाभी जी। फिर कल मिलेंगे।' और यह उसने जिस तेजी से किया था, उससे साफ झलकने लगा था कि किसी को तुरंत आत्मीय बना लेने की उसमें अद्‍भुत क्षमता है और किसी के लिये इस बात को नजर अन्दाज कर जाना आसान नहीं होता और मैं उसकी प्रथम निगाह से ही अपने आप में इस तरह खो गई थी कि किराया एडवांस ले ली मगर इतना भी न पूछ सकी कि वह...

वैसे जबसे मकान खाली हुआ है, किरायेदारों के आने का तांता लगा रहता है—सुबह शाम दिन दोपहर ऐरे गैरे नत्थू खैरे...जवाब देते देते मैं तंग आ जाती हूं। कितने को दिखाऊं कितने को न दिखाऊं। किसी को मकान पसन्द आ जाता है तो किराया नहीं जंचता और किसी को मकान पसन्द आ जाता है तो मुझे वह आदमी नहीं जंचता। उनका कहना है कि मुझे पैसे की उतनी जरूरत नहीं है कि मैं जिस किसी को मकान दे दूं। किरायेदार रखना भी तो आजकल आफत ही है। मैं उसे ही दूंगा जो कम से कम ढंग से, कायदे से, तौर-तरीके से, सलीके से रहना जानता

हो। मगर उससे मैं पूर्ण आश्वस्त थी। उसकी बातचीत चाल-ढाल वेशभूष हर चीज में एक शराफत झलकती थी। स्पष्ट था कि वह बड़ा कायदे का आदमी है। उस रात मुझे देर तक नींद नहीं आई और उन्हें पत्र भी लिख दिया कि एक अच्छा किरायेदार कल आ रहा है।

सुबह ही वह सामान लेकर आ गया था। सामान देखते ही मुझे काठ मार गया। एक खाट, एक कुर्सी एक मेज और किताबों की चार पांच गठरियां, बस इतना ही था उसका सामान। बिल्कुल फक्कड़ जैसा और उन सामानों की वहशियत से साफ साफ गोचर हो रहा था कि...

मेरे लिये यह बात अप्रत्याशित थी। दरअसल रात मेरे दिमाग में यह बात आई थी और मैंने उसका निराकरण भी कर लिया था, 'भला अकेला आदमी इतना किराया देकर इतना बड़ा मकान लेकर क्या करेगा?' और मुझे अपना तर्क बहुत शक्तिशाली सा लगा था। अपने इसी तर्क पर अब मुझे तरस आ रहा था। मैं अपनी ही भावनाओं से पराजित सी हो रही थी। रात से अब तक एक अच्छे किरायेदार के आनें की जो खुशी थी वह क्षण भर में काफूर सी हो गई थी, दिमाग झल्लाने सा लगा था। गेट के अन्दर प्रवेश करते हुए ही उसने जिस लहजे में 'नमस्ते भाभीजी' कहा था, मैं नर्वस सी हो गई थी और सही ढंग से नमस्ते भी न कर पाई। सामान रिक्शा से उतारकर ऊपर ले जाने में उसका हाथ बंटाने के बजाय मैं चोट खाई बिल्ली की तरह सोफा पर आकर निढाल सी लेट गई थी। बार बार एक ही बात समस्त मन मस्तिष्क पर चेतना पर आक्रमण कर रही थी। उसे एडवांस वापस कर दिया जाये ताकि सामान लेकर वह लौट जाये। ऐसी भावनाओं के आक्रमण की आघात को सहती सहती मैं निढाल होकर सोफा पर लेटी थी कि अकस्मात् वह आ गया। उसने मेरी ओर सरसरी निगाह से देखा और मुस्कुराते हुए कहा, 'देखिये आते ही मैंने आपसे मांगना शुरू कर दिया। मैं एक बहुत बड़ी चीज मांगने आया हूं।' मेरे मुंह से निकल गया 'क्या?' और तब उसने बड़े हौले अंदाज में कहा था 'झाडू' और मुस्कुरा दिया। वह मेरे सामने खड़ा था। न चाहते हुए भी मेरी नजर उस पर टंग सी गई थी। उसकी आंखों की गहराई दृष्टि का तीखापन और चेहरे की प्रफुल्लता–मैं जैसे विंध सी गई।

'ओह! सॉरी! मैं ऊपर झाडू लगाना ही भूल गई। अच्छा चलो। मैं अभी आकर झाडू लगा देती हूं।' न जाने यह वाक्य मेरे मुंह से कैसे निकल गया और वह भी तुम परक वाक्य में। वही मन जो उसे वापस जाने को कह देने के लिये सोच रहा था—झाडू लगाने ऊपर जाने लगा।

धीरे-धीरे मैं भी सहज सी होती गई। पड़ोसियों की जिज्ञासा जरूर थी 'अरी तुमने हिप्पी बैचलर किरायेदार को कैसे रख लिया?' मैंने बड़ी सफाई से उत्तर दे दिया 'उनके एक मित्र के छोटे भाई हैं। शादी हो चुकी है। मगर बीबी अभी पढ़ ही रही है। वे भी अभी एक रिसर्च स्कालर है।' और कोई वजह नहीं थी कि पड़ोसी मेरी उस बात को मनगढ़न्त समझ लेते। बाहर से सब कुछ ठीक था...मगर अन्दर से...

सूर्योदय से पहले ही वह उठ जाता। नहाता धोता और कंधे पर झोला लटकाये बाहर निकल जाता। जाते जाते अगर मुझ पर दृष्टि पड़ जाती तो बड़े अदब से कहता 'गुड मार्निंग भाभी जी' कभी कभी मेरे मुंह से निकल जाता 'आओ चाय पी लो।'

उसका जवाब होता 'ओह! थैंक्यू भाभीजी मगर अभी जरा जल्दी है। बस मिस कर जायेगी। फिर कभी।'

और फुर्ती से गेट खोलकर वह बाहर निकल जाता।

शाम को गेट खोलते ही कमरे में घुस जाता।

घुसते ही पूछ बैठता 'कहिये भाभीजी क्या हाल चाल है?'

'ठीक ठाक'

'भाई साहब का खत आया?'

'हां।'

'कुशल हैं?'

'बिलकुल।'

'निकट भविष्य में आ रहे हैं या नहीं?'

'नहीं, अभी नहीं।'

और फिर हम दोनों के बीच सन्नाटा सी छा जाती।

तब तक वह झोला लटकाये खड़ा ही रहता।

मैं कहती—बैठ जाओ।

'अच्छा कपड़े बदल लूं। मुंह हाथ धो लूं तो फिर आऊंगा।' और वह तेजी से सीढ़ियां चढ़ने लगता। थोड़ी देर बाद वह कपड़े बदलकर आता और सोफे पर आकर बैठ जाता। मैं भी सोफे पर जा बैठती और फिर...वह एक बुद्धिजीवी व्यक्ति था। साहित्य कला संस्कृति एवं राजनीति की बातें करने वाला और सोचने वाला। मैं ठहरी निहायत मामूली औरत। बचपन से ही ऐसे परिवेश में रहती एवं पलती आई हूं कि उन बातों से कोई मतलब ही नहीं, कोई झुकाव या लगाव नहीं। वह शायद इस सत्य को भांप गया था। इसलिये ऐसी चर्चा कभी नहीं छेड़ता। और अगर कभी किसी प्रसंग पर उत्तेजित होकर चर्चा छेड़ भी देता तो उसे अधूरा छोड़कर विषय बदल देता। नतीजा यह होता कि वह मौन बैठा रहता और मौन बैठकर बोर होता रहता। निस्संदेह तब उसकी इच्छा होती उठकर ऊपर चले जाने की। मगर मुझे उसके पास बैठे रहने में एक अजीब सा आनन्द होता था—न जाने क्यों? उसकी आंखो की गहराई, उसके चेहरे की प्रफुल्लता, उसके 'भाभीजी' के सम्बोधन के कारण। या दिनभर के अकेलेपन से ऊब कर क्षण भर के लिये किसी के साथ दो टूक बातें कर लेने की चाह या लम्बी अवधि से उनके सान्निध्य एवं साहचर्य का अभाव। वजह जो भी हो—मगर मेरी इच्छा जरूर रहती कि वह देर तक मेरे पास बैठा रहे और हम बातें करते रहें...। इसलिये मैं तरह तरह की बातों में उसे उलझाये रखती। अपने स्कूली जीवन की रुमानी बातें या अपनी शादी की बातें, हनीमून की बातें, कभी लखनउ प्रवास तो कभी बम्बई प्रवास की बातें। मतलब विगत जीवन की सुखद दुखद अनुभूतियों में उसे उलझाये रखती। लेकिन मेरे पास भी अपनी विगत जिंदगी की अनुभूतियों का स्टाक सीमित था कभी भी चूक सकने वाला। एक दिन वह चूक भी गया और फिर हम बहुत ही मामूली बातों पर उतर आये थे। 'देखो दीवार की सफेदी झड़ने लगी है। किवाड़ का रंग फीका पड़ गया है। चूहों का उपद्रव बहुत बढ़ गया है। नगर पालिका का सफाई अभियान केवल कागजी घोड़ा बनकर रह गया। आज गजब हो गया—सब्जी बना रही थी कि डाकिया आ गया। मैं उधर डाकिये के पास गई इधर सारी सब्जी जल गई।' और ऐसी बातें करते करते जब ग्यारह बज जाते

तो उसे जम्हाई आने लगती तो मैं उठकर चाय बनाती। 'चाकलेट वाली' वह कहता। हम दोनों साथ-साथ चाय पीते। वह कहता 'भाभीजी चाय तो आप 'टॉप' की बनाती है।' मैं कुछ भी उत्तर नहीं दे पाती मुस्कुरा कर रह जाती। मन ही मन गद्‌गद्‌ होकर रह जाती। चाय पीकर वह कहता 'अच्छा भाभीजी, गुड नाइट।' और फुर्ती से सीढियां चढ़ने लगता। यह मेरी रोज की आदत सी हो गई थी। जिस तरह सुबह उठना, नहाना धोना बच्चों को तैयार कर स्कूल भेजना, खाना बनाना, कपड़े धोना मेरे लिये जरूरी था। उसी तरह उसका शाम को आना, बातें करना, साथ साथ चाय पीकर सोने चले जाना, मेरे अस्तित्व से जुड़ सा गया था। जिस रोज थोड़ी-सी देर जाती, न जाने क्यों मेरा मन बेचैन सा हो जाता। मैं बार-बार गेट के पास आकर सड़क की ओर निहारती रहती, जंगले के रास्ते सड़क की ओर देखती रहती। गेट खुलने की आवाज सुनने के लिये कान लगायी रहती।

उस रोज भी वह बहुत देर से आया था। प्रतीक्षा करती करती मैं थक सी गई थी। मैंने किवाड़ बन्द कर दिया था, फिर भी नींद नहीं आ रही थी। इसलिये जंगले का दरवाजा खोलकर उसके सामने ही बैठ गई थी, गेट की ओर निहारती। उधर उसने गेट खोला, उधर मैंने किवाड़ खोल दिया। उसने कहा 'गुडनाइट भाभीजी।'

छूटते ही मेरे मुंह से निकल गया—'आ जाओ।'

और वह झटके से कमरे के अन्दर आ घुसा।

'आज बहुत देर कर दी तुमने?'

'हां जरा कला प्रदर्शनी देखने चला गया था।'

'अच्छा, खाना खाया कि नहीं?'

'हां', लेकिन उसके स्वर में उतनी खिन्नता थी कि साफ-साफ झलकने लगा था कि उसने महज औपचारिकता वश हां कर दिया।

'शर्माने की कोई बात नहीं है। मेरे पास खाना बचा हुआ है। बस थोड़ी-सी गर्म करने की जरूरत है। अगर खाना नहीं खाये हो तो खा लो।'

'नहीं नहीं ऐसी कोई बात नहीं है' वह फिर बोल गया। उसके

स्वर की खिन्नता छिप नहीं सकी। स्पष्ट था कि इस समय कॉलोनी के सारे होटल बन्द हो चुके होते हैं। इसलिये उसे खाना नहीं मिला होगा। खाना गरम कर उसके सामने परोस दिया। खाना खाते उसने पूछा

'आज भी भाई साहब का कोई खत आया कि नहीं?'

पिछले कई दिनों से उनका खत नहीं आ रहा था जो कि उसे मालूम था।

'आज तो आ गया।'

'ठीक ठाक हैं?'

'बिलकुल। तुम्हारा कोई खत नहीं आता है। क्या बात है? यहां का पता नहीं दिया है क्या?' यह प्रश्न सुनते ही उसके चेहरे पर आर्द्रता तैरने सी लगी। सदा गंभीर सा दीखने वाला उसका चेहरा और भी गंभीर और गमगीन सा हो गया। मुझे लगा कि यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिये था। इस प्रश्न से तकलीफ सी हुई। वह बिल्कुल चुप सा हो गया और मैं भी प्रश्न को दोहरा नहीं सकी। मगर यह प्रश्न उसके अन्र्तमन को दूर तक छेद गया था। उसने मेरे चेहरे की ओर सूक्ष्म दृष्टि से देखा और और बहुत ही हौले अंदाज में कहा 'भाभीजी।' और फुर्ती से कमरे से निकलकर सीढ़ियां चढ़ने लगा। मैं चौखट पर हक्का बक्का सी खड़ी रह गई।

इस प्रश्न पर उसका इस तरह खामोश रह जाना मेरे खाली मन में ढेर सारी शंकायें पैदा कर गया। हो सकता है किसी लड़की से उसे प्रेम हो गया हो। बाद में लड़की ने उसे धोखा दे दिया हो। यह भी संभव हो सकता है कि लड़की के चक्कर में फंसकर उसने मां-बाप भाई-बहन जैसे आत्मीय सम्बन्धों को ठुकरा दिया हो और बाद में लड़की भी छल गई हो। बात जो भी हो उस समय उसके बारे में एक अजीब सी रहस्यमयता मेरे मन-मस्तिष्क में कौंधने लगी और मैं इस रहस्य की दीवार को शीघ्र ही फांद जाना चाहती थी।

दूसरे दिन देखकर खुशी हुई कि इस प्रश्न की कोई भी प्रतिक्रिया उसके चेहरे पर नहीं झलक रही थी। पहले की तरह ही वह शाम को आने लगा था। मगर हम मुंह से चुक चुके थे। और ज्यादे दिन तक केवल मुंह के बल पर हम एक दूसरे को व्यस्त या उलझाये नहीं रख

सकते थे। एक दूसरे को बांध नहीं सकते थे। उस रात चाय के बाद हाथ में इलायची लेती हुई मैंने कहा, 'लो इलायची खाओ।'

उसने मेरे हाथ से इलायची उठा लिया। यहीं मेरा हाथ उसके हाथ से छू गया था। मैंने आवेश वश उसका हाथ पकड़ लिया था। उसकी हथेली को देखते हुए कहा था 'अरे बाप! तुम्हारे हाथ में 'कट' ही 'कट' है।'

'जानती हैं भाभीजी ये 'कट' मेरी जिंदगी की मुसीबतों एवं उलझनों के प्रतीक हैं।' वह मेरा हाथ देखने लगा था, 'आपका हाथ तो बिल्कुल सपाट सा है। मतलब आपकी जिन्दगी में कोई उलझन या मुसीबत नहीं आयेगी।' 'अच्छा! तुम हस्त-विद्या भी जानते हो?' कहते हुए मैंने उसका हाथ दबा दिया था। फिर कई दिनों तक यह सिलसिला जारी रहा। हम एक दूसरे की हथेली को सहलाते रहते दबाते रहते। मगर कुछ दिनों बाद एक दूसरे को उलझाये रखने में यह आयाम भी फेल-सा होने लगा। लाजिमी था तब हम कोई और आयाम तलाशते। हमने तलाश लिया था। हथेलियों से बढ़कर हमारी अंगुलियां एक दूसरे की खुली कलाइयों एवं बाहुओं पर चलने लगी थी।

मैं नहीं जानती कि मैं ऐसा क्यों करती थी या वह ऐसा क्यों करता था। क्या मैं उसे उस रूप में पाना चाहती थी? नहीं कथापि नहीं, ऐसी मेरी कोई चाह या कमजोरी नहीं थी। मगर मुझे अच्छा लगता था उसका पास बैठना, उससे बातें करना, उसके साथ खेलना–

उस रात फिर वही प्रश्न मैंने उसके सामने रख दिया था। उस रोज की तरह ही वह गुमसुम और उदास सा हो गया था। 'भाभीजी' उसने कातर नजरों से मेरी ओर देखा था और खामोशी से ढंके अपने चेहरे को अचानक मेरी गोद में डाल दिया था। रोमांचित होने के बजाय मैं सिहर सी गई–अगर ऐसी स्थिति में कोई हमें देख ले तो? उसका हल्का चेहरा मुझे भारी सा लगने लगा।

'चलो तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है–सो जाओ।'

झटके से मैंने उसका चेहरा अपनी गोद से हटा दिया। सोफे से उठ गई। उसकी उठने की जैसी इच्छा ही नहीं हो रही थी। उसका हाथ पकड़ कर मैंने कहा, 'जाओ सो जाओ। मुझे भी अब नींद आ रही है।'

सोफे से उठकर वह खड़ा हो गया था और अजीब सी नजरों से मुझे घूरने लगा था। उसकी नजरों के तीखेपन से मैं तिलमिलाने सी लगी। उसका हाथ पकड़कर मैं उसे चौखट तक घसीट लाई। लेकिन चौखट के पास आते ही उसका पांव ठिठक सा गया। जैसे कि वह चौखट के बाहर जाना ही नहीं चाहता हो। उसने मेरी ओर तेज निगाहों से देखा, 'भाभीजी आज की रात क्या मैं यहां नहीं ठहर सकता हूं।'

उसके इस प्रस्ताव से मैं भौचक्के में आ गई। 'नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता' और वह थोड़ा सा चौखट के बाहर खिसका कि मैंने फुर्ती से किवाड़ का पल्ला बन्द कर दिया। कुछ देर तक वह किवाड़ के बाहर यों ही खड़ा रहा, आंगन में चहल कदमी करता रहा। फिर सीढ़ियां चढ़ गया। लेकिन आज की रात उसे क्या हो गया? अभी मैं सोने के लिये बिछौना झाड़ ही रही थी कि वह किवाड़ खटखटाने लगा। दो तीन आवाज तो मैंने अनसुनी कर दी। खटखटाने का क्रम जारी रहा तो लाचार होकर मुझे किवाड़ खोलना ही पड़ा। किवाड़ खुलते ही वह झटके से अन्दर आ घुसा और कहने लगा 'आज की रात मैं अकेले नहीं रह सकता। आपके पास ही रहना चाहता हूं।'

मैंने बेरुखी से कहा, 'इससे कोई फायदा नहीं होगा। तुम्हें भी परेशानी होगी और मुझे भी। और अगर किसी ने देख लिया तो बदनामी अलग। अगर वे ही अचानक आ गये तो पता नहीं क्या सोच बैठेंगे? तुम अभी चले जाओ। सुबह हम फिर मिलेंगे।'

'नहीं भाभीजी। अकेलेपन के इस दबाव को आज मैं नहीं दबा सकता। आप विश्वास रखिये भाभीजी मैं आपकी कदर करता हूं। ऐसा कुछ भी नहीं होगा जो आप नहीं चाहती है। अगर आज की रात आप मुझे अपने पास नहीं रहने देंगी तो मैं समझूंगा कि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है। मैं आपकी...।' और वाक्य को अधूरा छोड़कर ही उसने मेरी ओर देखा था। लेकिन उसकी नजर में इस समय वह तीखापन नहीं था। उसकी जगह एक निरीहता था, एक विवशता थी।

यद्यपि उसके इस प्रस्ताव पर मैं सहमत नहीं थी। मगर उसकी आंखों की विवशता ने मुझे यह कहने को विवश कर दिया,—'चलो सोफे

पर बैठ जाओ। मैं अभी चाय बनाती हूं।'

'भाभीजी मैं अभी चाय नहीं पीऊंगा' और वह सोफे पर आकर बैठ गया। मैं भी सोफे पर आकर बैठ गई थी। उसके पास नहीं उससे छिटक कर दूर-दूसरे किनारे पर। थोड़ी देर तक दोनों के बीच चुप्पी सी छायी रही। उसने चुप्पी को तोड़ते हुए कहा, 'आपको नींद आ रही होगी? कब तक इस तरह बैठी रहेंगी? सो जाइये।'

'तुम भी ऊपर जाकर सो जाओ। ज्यादा परेशान मत होओ।'

'नहीं मैं अभी आपसे दूर नहीं जा पाऊंगा। आप इतमिनान से सो जाइये। कहिये तो मैं बत्ती बन्द कर देता हूं।'

उसके इस प्रस्ताव से तो मैं डर सी गई। एक आतंक मुझे दबोचने सा लगा। उसकी तरफ से अपने चेहरे को हटाकर भयभीत होकर दीवार की ओर देखने लगी। मैं बिल्कुल नर्वस सी हो रही थी। वह भांप गया। कहने लगा, 'लगता है आप अभी तक विश्वस्त नहीं हो पायी हैं। मैं स्पष्ट बता दूं मैं आपसे कुछ और अपेक्षा नहीं करता हूं। मुझे आपसे बहुत कुछ मिल चुका है, जो कुछ मिला है वह सब कुछ है, मेरे समस्त अस्तित्व को एक नया अर्थ देने के लिये।'

वह मुझे पूरी तरह आश्वस्त करना चाहता था। मेरी आंखों के सामने अंधेरा सा छा गया था। कुछ सूझ नहीं रहा था। तभी उसने झटके से बिजली का स्वीच ऑफ कर दिया और सोफे से उठ गया।

'अच्छा भाभीजी 'गुड नाइट' आप सो जाइये।' और वह कमरे से बाहर निकल गया। मुझे जान में जान आई। झटके से दरवाजा बन्द कर मैं पसर गई। मगर आंखों में नींद कहां...

यद्यपि मैंने बहुत चौकसी बरतने की कोशिश की थी। फिर भी दुनियां की नजरों से बच नहीं पायी थी। इतनी रात में मेरे कमरे से बाहर निकलते एक पड़ोसिन ने देख लिया था। सुबह होते ही उसने टोक भी दिया। मैं बहुत ही आत्मविश्वास से सफाई मार गयी थी 'ऊपर पानी नहीं चढ़ा था। इसलिये पानी मांगने आया था।'

यों तो सहज ढंग से यह बात मैं कह गई थी। मगर अन्दर ही अन्दर मैं तिलमिला गई थी। मेरी चेतना मूर्च्छित सी हो रही थी।

एक रोज इस साफगोई से काम चल सकता था। लेकिन रोज रोज ऐसी सफाई से दुनिया की नजरों से नहीं बचा जा सकता था। चूंकि पड़ोसिन एक बार भांप चुकी थी—अब उन्हें और भी रुचि होगी इस प्रसंग पर गौर करने में। अतएव बहुत ही सतर्कता की आवश्यकता थी। मैं भी कुछ ऐसा करने की स्थिति में नहीं थी और न मुझमें इतनी हिम्मत ही थी कि दुनिया की नजरों से बेखबर रह सकूं या अपने वर्तमान इमेज पर कोई कलंक लगा सकूं। उसका भी क्या ठिकाना। अपना विश्वास जमाने के लिये अभी इतना 'इन्नोसेंट' बनता हो—बाद में वही...

इसलिये मैं निश्चय कर चुकी थी कि अब उससे दूर ही रहूंगी। कभी भी किसी भी समय उससे कोई मतलब नहीं। दूसरे दिन शाम होते ही खाना खिलाकर बच्चों को सुला दिया और फिर किवाड़ बन्द कर जंगला बन्द कर पर्दे फैलाकर खुद भी लेट गई। अभी बत्ती बन्द करने जा ही रही थी कि गेट खुलने की आवाज हुई। यहीं मुझे थोड़ी देर हो गई। वरना मेरा यही आइडिया था कि उसके आने से पहले ही मैं खिड़की दरवाजा बन्द कर बिजली बन्द कर लेट जाऊंगी ताकि वह यह सोचकर कि हम लोग सो चुके हैं या अन्दर नहीं हैं, कहीं बाहर गये हैं, सीधा ऊपर चला जायेगा। वह दरवाजे के पास आया, थोड़ी देर ठिठका फिर किवाड़ खटखटाने लगा। उसका खटखटाना जारी रहा और और मैं पत्थर की तरह अटल अडिग बिस्तर पर पड़ी रही। वह सीढ़ी चढ़ गया और फिर नीचे आया। किवाड़ खटखटाने लगा—मैं बुत सी लेटी रही। इस तरह सीढ़ी चढ़ना और नीचे आकर किवाड़ खटखटाना यह सिलसिला कई बार चला। मैं अपने निश्चय पर दृढ़ बनी रही। सिसकियों की आवाज फिर ठकम ठक तोड़ फोड़ की आवाज मेरे कानों में आती रही फिर भी मैं अडिग अटल पड़ी रही। आधे घंटे बाद ठकम ठक की आवाज भी बन्द हो गई और जूते चरमराते हुए वह जीने से नीचे उतरा और फुर्ती से गेट खोलकर बाहर निकल गया। मैं आश्वस्त हुई चलो अच्छा हुआ। अब वह बाहर गया होगा। कहीं से शराब की बोतलें ले आयेगा और शराब से तनाव को कम कर लेगा। मेरे ऊपर से यह बला तो टली। फिर भी मैं बत्ती जलाने की हिम्मत नहीं कर

सकी। फिर मुझे कब और कैसे नींद आ गई पता नहीं...

सुबह जब वह नियत समय पर नहीं उठा, बाहर नहीं गया। मेरा कलेजा धक् धक् करने लगा। एक भय दबोचने लगा। फटाफट सीढ़ियां चढ़कर दरवाजा खट खटाने लगी। कुछ क्षण खटखटाने के बाद दरवाजा खुल भी गया। दरवाजा खुलते ही मेरी नजर कमरे में यत्र तत्र बिखरी चीजों पर पड़ी। कमरे में कोई चीज सही साबूत नहीं दिखी। किताब कापियां अपनी दुर्दशा का रोना रो रही थी। टेबल लैम्प टूटा पड़ा था, बल्ब चकनाचूर हो गया था। कुर्सी लुढ़की पड़ी थी और मेज की एक टांग टूट गई थी। वह भी औंधे मुंह गिरा पड़ा था। बात इतनी ही रहती तो कोई बात नहीं। उसके सर पर पट्टी बंधी थी। मुझ पर नजर गड़ाये वह एक टक मुझे घूरे जा रहा था। मैं उसकी आंखों की कातिलाना चमक को झेल नहीं सकी थी। सीढ़ी की ओर मुड़ती बोली थी, 'यह क्या हुलिया बना लिया तुमने। नीचे आ जाओ। मैं चाय बनाती हूं।'

मैं नीचे आ गई थी। वह भी नीचे आ गया था। उसके चेहरे पर अजीब सी गंभीरता छायी हुई थी। इस सीरियसनेस को सहज बनाने के लिहाज से सस्ते मूड में पूछ बैठी, 'सर कैसे तोड़ डाला? क्या बस से गिर गये थे।' वह मेरी ओर देखता जा रहा था—बिल्कुल मौन।

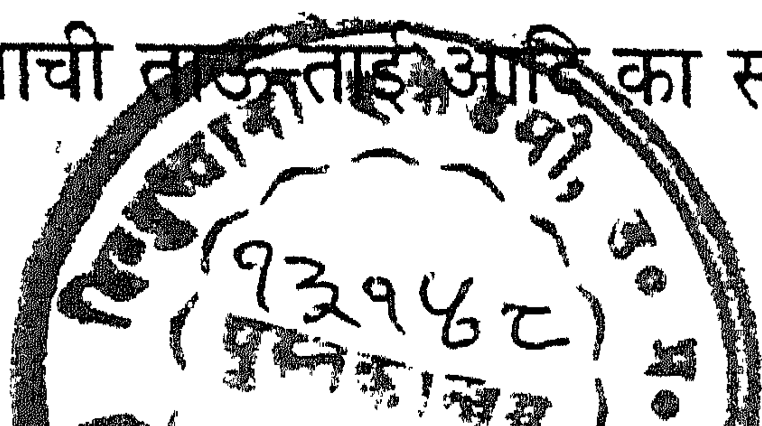
'मुझे नहीं बताओगे क्या?'

'जानकर क्या करोगी?' उसने उपेक्षाभरे शब्दों में कहा

'क्या मैं इतना भी जानने की हकदार नहीं हूं?'

उसकी आंखें फिर सजल हो गई थीं

'इसमें आपका कोई कसूर नहीं, कसूरवार तो मैं स्वयं हूं।'...उसकी आंखों से आंसू की बूंदे गिरती जा रही थीं और मुंह से...मैं नहीं जानता कि मेरे मां-बाप है भी या नहीं और अगर हैं तो कहां है? लोग कहते हैं 1947 में पश्चिमी पंजाब से जो शरणार्थियों का काफिला आया था उसी भीड़ में मैं भी आया था। पता नहीं कैसे आया? क्या हुआ? तब से शरणार्थी शिविर में रहकर बड़ा हुआ—जब तक शरणार्थी शिविर में था—ओ लौंडा अबे छोकरा...यही मेरा नाम था, मेरी पहचान थी। मैं नहीं जान सका कि मां-बाप भाई-बहन, चाचा-चाची ताऊ-ताई आदि का सम्बन्ध



क्या होता है, कैसा होता है। फिर ट्यूशन कर पढ़ा लिखा तो लगा मैं सिर्फ ट्यूटर हूं, मास्टर हूं। किराये पर रहने लगा तो किरायेदार बन गया। मैं तो यही समझता था कि मैं इन्सान नहीं हूं—केवल ट्यूटर मास्टर या किरायेदार हूं। आपके पास भी मैं एक किरायेदार की हैसियत से ही आया था। फिर आपने ऐसा अपनत्व क्यों उड़ेल दिया? मुझे लगा जैसे मरुभूमि में महुआ महक गया हो। जब बच्चे यहां अंकलजी कहने लगे तो मुझे लगा कि मैं बच्चों के ट्यूटर से अब 'अंकल' हो गया हूं। वैसे तो आजकल साधारणतया कोई किसी को भैया बहन भाभी कह देता है—मात्र औपचारिकता वश। लेकिन मैं कतई नहीं स्वीकार कर सकता कि आपको मैं भाभीजी केवल औपचारिकतावश ही कहता हूं। हां शुरू में औपचारिकतावश ही ऐसा सम्बोधित कर दिया था। लेकिन आपने ऐसा अपनत्व, ऐसा स्नेह, ऐसा प्यार परोस दिया कि मैं इसे ही यथार्थ समझने लगा—मुझे लगा कि मुझे परिवार मिल गया है, प्यार मिल गया है। लेकिन नहीं...कल मैंने साफ-साफ गौर किया था गेट खोलते ही आपने बिजली का स्वीच ऑफ कर दिया। फिर जब मैंने किवाड़ खटखटाया तो कोई रिसपोंस नहीं। मैं कतई नहीं मान सकता कि आप इतनी देर में गहरी नींद में सो गई होंगी। मेरे लिये यह स्थिति बड़ी असहयनीय थी। अपने जीवन के प्रथम आत्मीय सम्बन्ध के प्रथम स्नेह की इस उपेक्षा को मैं बर्दाश्त नहीं कर सका। अगर उस समय मेरे पास नींद की गोलियां होती या जहर का पुड़िया होता तो शायद मैं...कुछ ऐसी ही मानसिक स्थिति मेरी हो गई थी। लेकिन संयोग समझिये ऐसा कुछ नहीं था। कमरे में सिर्फ ईटों की मोटी मोटी दीवारें थीं। दीवारों से...इन्हीं दीवारों ने मुझे सिखा दिया कि...

बोलते बोलते वह रुक गया। मगर उसकी आंखों से आंसूओं की धारा तेज होती जा रही थी और मैं विवश आंखों से देख रही थी...मेरी नजरें दो भागों में विभक्त हो गई थी। एक भाग दीवार की सफेदी पर...जिस पर झाड़फानूस के दाग उभर आये थे और दूसरा भाग...उसके माथे पर बंधी पट्टी पर जिस पर खून के लाल लाल धब्बे उभर आये थे...और में सोच रही थी कहीं यह दीवार मैं खुद तो नहीं?

पत्थरों के दर्द

पते की लिखावट से ही जान गयी हूं—आशु का खत है। अगर पहले की तरह बगैर बुलाये मेहमान की भांति महीने में दो चार खत आ धमकते तो मैं उसे पढ़े बिना ही कूड़ेदान में फेंक देती। लेकिन लम्बे अंतराल के बाद उसका खत पाकर मैं पढ़ने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही हूं।

उसकी शादी के छः महीने हो गये हैं और शादी के डेढ़ दो महीने तक उसके खत लगातार आते रहे थे और एक दिन आते आते ही यों आने बन्द हो गये जैसे कि जलते जलते बत्ती अचानक गुम हो जाती है। लेकिन कसूर उसका नहीं। कसूरवार तो मैं खुद हूं। शिष्टाचार के नाते भी उसके किसी खत का जवाब नहीं दिया। मैं जवाब भी क्या देती? हर पत्र में, पत्र की पंक्ति पंक्ति में आलोक के गुणों की चर्चा—उसके सुपुष्ट शारीरिक सौष्ठव से लेकर उसके प्यार की पवित्रता का बखान 'आलोक ने मेरी जिंदगी को आलोकित कर दिया। आलोक को पाकर मैं निहाल हो गई हूं। उसका मुखमण्डल ही केवल सौम्य नहीं है, व्यक्तित्व ही केवल शालीन नहीं है, प्रकृति ही केवल शान्त नहीं है अपितु उसके अन्दर सब कुछ उतना ही सौम्य शालीन ओर शान्त है। कई सहेलियों के मुंह से सुना था कि पुरुष की प्रकृति कितनी भी गंभीर क्यों न हो, नारी को पाने के लिये वह चापलूस और खुशामदी जरूर हो जाता है, किन्तु वह सब कुछ इतनी शांति और गंभीरता से कर जाता है तो महसूस होता है जैसे मैं कोई अप्सरा होऊं जिससे प्रणय लीला करने देव तुल्य शालीनता की चादर लिपटाये इन्द्र स्वयं चले आये

हों। हर बार उससे जुड़ने के बाद यही लगता है कि जैसे आनन्द के गहरे सागर में डुबकी लगाकर आई हूं और हाथ में केवल मणि ही मणि हो। मुझे तो ऐसा लगता है कि नारी के लिये सबसे बड़ा सुख पुरुष का प्यार भरा स्पर्श ही है। जो नारी इस सुख से वंचित रह गई वह जीवन के एक अवर्णनीय आनन्द के अनुभव से वंचित रह गई। मैं तो आलोक के एक एक स्पर्श के लिये बलि बलि जाऊंगी।'

उसका हर खत पढ़कर मैं चिढ़ सी जाती, 'सावन में जन्मा गिद्धर और भादो में आई बाढ़ तो गिद्धर ने कहा कि ऐसी बाढ़ मैंने आज तक जिंदगी में देखा ही नहीं।' ठीक वही बात। सस्ती और भावुक लड़की कहीं के। कौन पति अपनी पत्नी को प्यार नहीं करता? और आनन्द का अनुभव किसे नहीं होता है? सोचती है और किसी को ऐसा प्यार मिलता ही नहीं होगा? कुएं का मेंढक, पत्र की पंक्ति पंक्ति से मैं चिढ़ सी जाती। फिर भी न जाने क्यों पत्र बार बार पढ़ने की इच्छा होती? किन्तु हर बार पढ़कर मैं और भी चिढ़ जाती। उसके प्रति और भी कटु हो जाती। अर्द्ध चेतनावस्था में उसे अनाप शनाप कह देती—चुड़ैल, चण्डालिनी मेरी दुश्मन। नारी को पुरुष से उतना नहीं डरना चाहिये जितना कि हमउम्र ज्यादा खूबसूरत नारी से। वही तो मेरी दुश्मन है जिसने मेरी कल्पना की इमारत को ढाह दिया। नहीं तो आलोक मेरा...

हां आलोक। मेरा ही आलोक!! पापा के एक दोस्त का लड़का था। इंजीनियर था। इसी शहर में उसकी सर्विस लगी थी। पहले पहल पापा के साथ आया था। उसके पापा ने मेरे पापा से कहा था, 'भाई इसके लिये भी एक कमरा खोज दो।'

पापा कह बैठे, 'भैया मेरा घर होते हुए इसके लिये दूसरा कमरा क्यों देखा जाय? जैसे तुम मेरे दोस्त वैसे यह मेरा बेटा। इसी घर में रहेगा। जो हम खायेंगे वह भी खायेगा। बदले में जो मुनासिब समझे दे देना।'

और ऊपर की बरसाती में वह रहने लगा था। जब वह परिवार के एक सदस्य की हैसियत से रहने लगा था तो घुल मिल जाना स्वाभाविक ही था। सुबह तो मैं शीघ्र ही लाइब्रेरी की ओर भाग जाती किन्तु रात

को उससे खूब बातें होती। साहित्य कला राजनीति पर जमकर चर्चा होती। हम घण्टों डायनिंग टेबुल पर बैठे रहते और अपना-अपना तर्क प्रस्तुत करते रहते। उसके अंदर सब कुछ संतुलित था। जैसा निर्मल तन वैसा विमल मन, जैसा उदात्त विचार वैसा ही अति संकोचशील स्नेही व्यवहार। यह उसके संतुलित शालीन व्यक्तित्व का प्रभाव था, उसके तन-मन की मीठास का असर था कि जब मैं मरकरी की दूधिया रोशनी में उसे देखती तो सोचती, 'इतने कोमल कोमल हाथ हथौड़े की चोट कैसे सहते होंगे? इतनी बड़ी-बड़ी पंखुरी सी खिली आंखें चिमनियों से उठ रहे धुएं को किस तरह झेलती होंगी? इतना नाजुक मिजाज मशीन की घड़घड़ाहट कैसे सहन करता होगा? और जब रात घनी हो जाती, सारी दुनिया सो जाती, केवल तारे टिमटिमाते रहते तो पलंग पर लेटी मैं सोचती रहती, 'आलोक मैं तुम्हें प्यार करती हूं, बहुत प्यार करती हूं। आलोक मैं तुम्हारी हूं और तुम्हारी बनकर रहूंगी। तुम्हारे बिना मेरे जीवन की कोई गति नहीं होगी।'

या आलोक ही कह दे, 'मैं तुम्हें चाहता हूं, तुम्हें बहुत गहरा चाहता हूं। बोलो मेरा साथ दोगी न?

'हां आलोक, मैं दूंगी। तुम्हारे लिये ही तो मैं दुनिया में पैदा हुई हूं। तुम आलोक हो और आलोक के बिना तो मैं अंधेरे में भटक जाऊंगी।' सोचती कह दूं, 'तुम पापा के कमरे में रहते हो, इसका किराया देते हो। मम्मी खाना खिलाती है—उसके भी पैसे देते हो। किन्तु मेरे हृदय में तुम रहने लगे हो, मेरी कल्पना कुंज के केले खाने लगे हो—इसके बदले तुम मुझे क्या दोगे? फिर सोचती 'मैं कैसी रद्दी सस्ती और चालू रोमाण्टिक बातें करने लगी हूं। ये तो बाजारू बातें हैं। मैं एक रिसर्च की छात्रा हूं। 'भारत चीन सम्बन्ध में नेपाल की भूमिका' जैसे गंभीर विषय पर शोध कर रही हूं। तब मेरे मुंह से ऐसी सस्ती बातें शोभा नहीं देती। लेकिन दूसरे ही क्षण फिर सोचने लगती 'ठीक मेरे कमरे के ऊपर ही उसका कमरा है, मेरी पलंग के ठीक ऊपर उसकी पलंग है। उसने करवट बदला होगा। कितना अच्छा होता जिस तरफ वह करवट बदलता उस तरफ मैं होती।' फिर सोचती 'छी : छी : छी : मैं कैसी

गन्दी और फूहड़ बातें सोचने लगी हूं।' लेकिन इन बातों को जित दूर भगाने की कोशिश करती इन बातों से उतनी ही भींग जाती। दिन की थकी मांदी रहती थी इसलिये नींद तो आ जाती। लेकिन सुबह हो ही फिर वही बात—जैसे कि मैंने रात भर यही सपना देखा हो 'मैं उस चौड़ी छाती पर सर रखकर लेटी हूं, वह मेरे गालों को सहला रहा ओठों को चूम रहा है, मैं मंत्रमुग्ध सी बनी सब कुछ खोयी जा र हूं।' किन्तु बत्ती का स्वीच ऑन करते ही पलंग के इर्द गिर्द सिर्फ राजनीतिशास की मोटी-मोटी किताबें बिखरी दिखाई पड़तीं तो लगता कि इन किता से भी ज्यादा आत्मीयता आलोक से जुड़ गयी है। आलोक के सान्नि में मैं अपनी प्रिय पुस्तकों के अस्तित्व तक को नकार सकती हूं। फि झटके से पलंग से उठ जाती। चाय का घूंट सुरकते डायनिंग टेबुल प आलोक से मुलाकात होती। मैं उसकी आंखों में झांकती। वह मेरी तरप घूरता तो लगता कि इन आंखों ने ही सब कुछ कह दिया हो। हृद का तार झंकृत कर दिया हो। अंर्तमन का सारा रहस्य खोलकर रख दिया हो। मैं सोचती, 'मैं तुम्हें प्यार करता हूं, बहुत चाहता हूं' ऐस कहने की जरूरत उन्हें ही पड़ती होगी जिनके दिल की भावनायें छू नह पाती होंगी। जिनकी भावनाओं की पैठ तह तक होती है उनके लिये शब्द भी फिजूल और अर्थहीन होते हैं। शोध विषयक पुस्तकों में खोयी मुझे बराबर ऐसा आभास होता कि, मैं कितना भी स्वतंत्र व्यक्तित्व का क्यों न होऊं, कितना भी महत्वाकांक्षी क्यों न होऊं, मुझे भी एक पुरुष के साहचर्य की जरूरत है। वह पुरुष आलोक ही हो सकता है—कोई और नहीं।

वही आलोक अब...

छब्बीस जनवरी का उत्सव देखने पिछले साल अंकलजी सपरिवार आ धमके थे। दो तीन दिनों तक खूब धमा चौकड़ी मची रही थी। फिर वे लोग लौट गये थे। लेकिन कुछ दिनों बाद अंकल फिर आये थे और पता चला कि पापा भी अंकल के साथ कहीं गये हैं। मम्मी ने इतना ही बताया कि आशु के लिये कोई रिश्ता तय करने गये हैं। 'कहां, किससे?' इतना पूछने की हिम्मत मैं नहीं कर सकी और न पूछना

ही मुझे अच्छा लगा। लेकिन आलोक के साथ आशु का रिश्ता! मैं तो ऐसा सोच भी नहीं सकती थी। दूसरे दिन पौ फटने के पहले ही पापा, अंकल लौट आये। दोनों बहुत खुश नजर आ रहे थे। अंकल बता रहे थे और पापा अपने दोस्त की तारीफ बखान रहे थे। उस दिन पापा पर मुझे बड़ा गुस्सा आया था। इच्छा हुई थी पापा के सफेद हो रहे बालों को नोंच लूं, अपने नाखून से नोच नोच कर उन्हें लहुलुहान कर दूं—'मुझे जिन्दा ही जला दिया और खुशी मना रहे हैं। भतीजी की शादी की बड़ी सूझी, अपनी बेटी की नहीं। यह भी तो सोचते कि वह भी अब जवान हो चली है। उसकी भी देह अब गमकने लगी है। इतना भी तो समझते कि इतने दिनों से मैं आलोक के सम्पर्क में रही हूं। मेरी भी कुछ इच्छा हो सकती है। एक मां बाप होते हैं जो अपनी बेटी के लिये अच्छे घर वर की तलाश में भटकते रहते हैं, लाखों रुपया खर्च कर डालते हैं। एक मेरे मां बाप हैं जो एक अच्छा घर वर बेटी के हक से छिनकर भतीजी के हवाले कर रहे हैं।'

मेरे चेहरे का रंग उतर गया था। चेहरा इतना फीका और निस्तेज हो गया था कि मैं नजर मिलाकर किसी से बात भी नहीं कर सकती थी। बगैर हाथ मुंह धोये चाय पीये, झोला लटकायी मैं चुपके से लाइब्रेरी की ओर सरक गई। स्वयं को पुस्तकों में डुबाने की कोशिश करती, लेकिन डूब न पाती, ऊपर ही ऊपर उफनती सी रहती, जैसे मन ही उचट गया हो। कल्पना आदमी का सबसे बड़ा सहारा है किंतु वही कल्पना जब यथार्थ के हथौड़े से टूट कर चूर चूर हो जाती है तो कितनी पीड़ा होती है। कैसी यंत्रणा होती है। मुझे लगा कि इस त्रासदायी यंत्रणा से मुक्ति पाये बगैर मैं कुछ कर नहीं सकूंगी और आज तक जिन भावनाओं को शब्दों के सांचे में ढालने की मैंने जरूरत नहीं समझा था उन्हें ही मुखरित करने के लिये मैंने आलोक का नम्बर डायल कर दिया। पता चला वह सीट पर नहीं है। छुट्टी की अर्जी मंजूर करवाने बॉस के पास गया है। थोड़ी देर बाद पुनः डायल कर दिया। वह सीट पर ही था। 'हेलो' शब्द की आवाज से ही मैं पहचान गई कि आलोक ही बोल रहा है। लेकिन उसकी आवाज इतनी परिचित सी लगी कि उससे

कुछ कहूं इतनी हिम्मत मैं कर नहीं सकी।

'ओह! सॉरी रौंग नम्बर' कहती हुई मैंने फोन पटक दिया। फोन पटकते ही मुझे लगा जैसे मैं खुद पटक दी गई हूं।

मानसिक दृष्टि से यों ही क्षत विक्षत अवस्था में, खोयी खोयी मैप रूम में बैठी थी कि चपरासी आया 'मैडम! आलोक नाम के कोई सज्जन बाहर खड़े हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।'

मैं बोल उठी 'कह दो उनसे। मेरे पास अभी समय नहीं है।' न जाने क्यों मेरी बातों में इतनी कड़ुवाहट कैसे आ गई थी?

चपरासी लौट गया था और पुनः आया था 'साहब कहते हैं मेरा नाम आलोक है। आपसे बहुत जरूरी काम है।'

इस बार मैं और भी कटु हो गई, चिढ़ सी गई और कड़े शब्दों में झिड़क बैठी, 'उनसे साफ-साफ कह दो मेरे पास फालतू कामों के लिये वक्त नहीं है।'

चपरासी सकपकाकर लौट गया था। शायद उसने भी सोचा होगा—कोई मनचला दिलफेंक छोकरा मुझे तंग करने यहां तक आ पहुंचा होगा।

लेकिन उसके बाद मेरी मानसिक स्थिति और भी विकराल सी हो गई। कुर्सी पर बैठना असह्य सा लगने लगा। लगा जैसे आलोक ने कुर्सी में असंख्य कांटे पिरो दिया है और कांटे मेरी जांघ में चुभने लगे हैं, अपने तेज नुकीले छोरों से सख्त घाव कर रहे हैं। मैं कुर्सी से उठ गई। बाहर आयी। चपरासी कहने लगा, 'आपके दोस्त बड़ी देर तक आपकी प्रतीक्षा में यहीं खड़े रहे। फिर अपना सा मुंह लटकाये चले गये।'

मैं भी घर लौट आयी। वह बोरा बिस्तर बांध अपने गांव चला गया था। बड़ा गुस्सा आया था उस पर। 'कुत्ते कमीने' और न जाने क्या क्या मैं बक गई थी। 'अगर प्रेम होता तो पहल तो उसे ही करना चाहिये था। मैं ठहरी औरत जात। अपने मुंह से खोलती भी कैसे कि मैं तुम्हारी दुल्हिन बनना चाहती हूं। और अगर बोल भी देती और तुम्हारी इच्छा न होती। तो ठीक है बच्चू! आज तुमने मेरा अपमान किया है, इसलिये कि आशु मुझसे ज्यादा सुन्दरी है, आशु के पिता मेरे पापा से

बड़े अफसर हैं। मुझे भी पी. एच. डी कर लेने दो—देखना दुल्हिन बनूंगी किसी आइ. ए. एस या आइ. एफ. एस आफिसर की जिसका व्यक्तित्व तुमसे भी ज्यादा सौम्य और शालीन होगा, जिसका भविष्य तुम जैसे मामूली इंजीनियर से कई गुना अच्छा होगा।' और मैं उससे बदला लेने की आग में जलने लगी थी।

दो दिन बाद ही आण्टी आई। कहने लगी 'अब दस पंद्रह दिन के लिये अपनी पढ़ाई लिखाई ताख पर रख दो। आशु तो तुम्हारी बहन है, सहेली है। आलोक के स्वभाव आदत से भी तुम अच्छी तरह परिचित हो। दोनों की इच्छा अनिच्छा, आदर-सत्कार का ख्याल तो तुम्हें ही करना पड़ेगा।'

उस समय आण्टी मुझे किसी स्वार्थी डायन सी लगी। मैंने जवाब तो कुछ नहीं दिया लेकिन दूसरे ही दिन घर में एक बात कहकर तहलका मचा दिया 'मैं कल ही भारत नेपाल, नेपाल चीन की सीमा का अध्ययन करने एक टीम के साथ जा रही हूं।'

पापा बोले, 'कल ही जाना जरूरी है?'

मैं कड़ककर बोली 'हां, कल ही जाना जरूरी है। सीमा क्षेत्रों का प्रत्यक्ष दर्शन अध्ययन किये बगैर शोध प्रबन्ध उतना प्रामाणिक नहीं हो पायेगा। अभी गर्मी का मौसम है। सर्दी आ जायेगी तो बर्फ गिरना शुरू हो जायेगा। इसलिये अभी जाना जरूरी है।'

मम्मी कहने लगी, 'फिर कभी चली जाना। शादी विवाह जिंदगी में एक बार होती है। आशु की शादी फिर नहीं होगी। अगर नहीं जाओगी तो आशु की मां जिंदगी भर उलहन उपराग देती रहेगी।'

पापा का कहना था, 'विवाह शादी तो यों ही होती रहती है। इन मामूली चपेड़ों में पड़कर किसी महत्वाकांक्षी व्यक्ति को अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहिये।' फिर मम्मी पापा आपस में झगड़ने लगे थे। दोनों को झगड़ते देखकर उस समय मुझे बड़ा मजा आया था।

जब तक मैं सीमा क्षेत्र से वापस आऊं अपना तबादला दूसरे शहर में करवाकर आलोक आशु के साथ चला गया था और फिर आशु के पत्र आने शुरू हो गये थे और इन पत्रों को पढ़ पढ़कर मैं फाड़ती रही थी।

आज फिर आशु का खत आया है। बहुत लम्बा चौड़ा पत्र है। बहुत कुछ लिखी है जोकि सर्वथा अप्रत्याशित है, 'मुझे तो लगता था कि आलोक का वह शान्त गंभीर चेहरा उसके व्यक्तित्व का एक विशिष्ट एवं आकर्षक पहलू है। मैं तो उसके प्यार में स्पर्श आनन्द के अनुभव सुख में इतनी भाव विह्वल हो गई थी कि कुछ सोच नहीं पाती थी। अब लगता है गंभीरता की ओट में वह एक दर्द पाल-पोस रहा है—एक राज छुपाकर रखा है। आखिर ओढ़ी गंभीरता की चादर में दर्द कब तक घुटता रहता? कभी न कभी उसे प्रकट होना ही था। पिछले दिनों वह होने भी लगा था। उसका स्वभाव अजीब चिढ़चिढ़ा सा हो गया था। बात बात पर बिगड़ बैठता, ताने बाने कसना शुरू कर देता। मुझे ऐसा महसूस होने लगा था कि वह मुझसे खुश नहीं है, संतुष्ट नहीं है। क्यों नहीं है? मुझसे उसे क्या नहीं मिला? मैं कुछ समझनहीं पा रही थी। लेकिन आज इस राज से भी पर्दा उठ गया। अचानक ही मुझे उसकी निजी डायरी हाथ लग गई। डायरी में यत्र तत्र सर्वथा तुम्हारा ही नाम है। कहीं लिखकर काट दिया गया है, कई रेखांकित कर दिया गया है, वहीं गोल घेरे में बांध दिया गया है। एक जगह लिखा है—

'जीवन में प्यार आदमी एक ही बार करता है, एक ही नारी से करता है—उसके बाद तो सिर्फ भटकन होती है। तुम क्या जानो आभा, जीवन के प्रथम प्यार से इस तरह टूट जाने पर मन की स्थिति क्या होती है। काश! जिस तरह तुम अपनी सारी बौद्धिकता से राजनीतिशास्त्र में गहरे डूब चुकी हो, उसी तरह अगर मेरी भावनाओं की गहराई में डूब पाती! तुम अगर एक बार संकेत भी कर देती कि आलोक 'मैं तुम्हें चाहती हूं, प्यार करती हूं' तो तुम्हारी उस उक्ति की हिफाजत के लियें मेरा सर्वस्व समर्पित था। पर शायद तुम मुझे अपने योग्य नहीं समझ पायी। उस दिन तुम बगैर चाय पीये चली गयी और जिंदगी का अंतिम फैसला करने जब मैं लाइब्रेरी पहुंचा तो तुम मिलने भी नहीं आयी। तुम जैसी कठोर नारी से अपने तन-मन को जोड़कर मैंने स्वयं को इस तरह जख्मी क्यों कर डाला?'

आशु लिखती है—'तुमने अपनी चुप्पी के कारण तीन प्राणियों की

जिंदगी तबाह कर दिया—एक मेरी, दूसरी अपनी, तीसरी आलोक की। मैं कोई गैर थोड़ी थी, तुम्हारी बहन थी, हम उम्र सहेली थी। अगर तुम एक बार भी मुझे इशारा कर देती कि तुम आलोक को प्यार करती हो या आलोक तुम्हें चाहता है तो मैं तुम दोनों के बीच क्यों टपकती? अब तुम्हीं बताओ आभा बहन मैं क्या करूं?'

आशु का यह खत पाकर उसके प्रति मेरी सारी कटुता न जाने कहां धुल गई है। बदला लेने की सारी भावना न जाने कैसे गुम हो गई है? मन की टीस तन की कसक न जाने कहां भाप बन कर उड़ने लगी है? और स्वयं को मैं बहुत हल्का-हल्का महसूस करने लगी हूं। न जाने क्यों?

प्रकृति और पुरुष

पिछले कुछ दिनों से एक अजीब सी अनुभूति के दौर से गुजर रहा था। वह मेरी तरफ तेजी से खींचती चली आ रही थी।

और न चाहते हुए भी मैं जबरन उसकी तरफ खींचता चला जा रहा था।

उसके लिये यह बात स्वाभाविक थी—आयु शिक्षा दीक्षा परिवेश, परिवरिश एवं परिस्थिति सभी दृष्टि से। मेरे लिये यह बात सर्वथा प्रतिकूल थी। खासकर मेरे मर्यादित संस्कार की वजह से।

मेरे खिंचाव से वह बच जाये, मुझसे उसे कोई लगाव न रहे, इस बात को मद्देनजर रखते हुए मैंने स्पष्ट शब्दों में उसे कह दिया था कि मैं शादीशुदा हूं। इतना ही नहीं मैंने पत्नी का रूप रंग नाक नक्श, लावण्य सौन्दर्य का जिक्र भी अलंकृत शब्दों में कर दिया था ताकि वह जले भुने, स्वयं को दीन हीन महसूस करे। किन्तु ऐसा कोई भाव उसके चेहरे पर नहीं उभरा था। बहुत संयत स्वर में बोली थी 'तुम तो बड़े भाग्यशाली हो। मुबारक हो, तुम्हें हसीन बीबी। इसी खुशी में एक काफी तुम पर डयू।' एक रोज पत्नी द्वारा भेजे गये लिफाफों को मैंने उसके सामने ही चूम लिया था और तब मुझे उम्मीद थी कि उसके चेहरे पर ईर्ष्या एवं द्वेष की वक्र रेखायें उभर आयेंगी और वह स्वयं को अपमानित एवं लज्जित महसूस करेगी। किंतु नहीं, वह मुस्कुराई थी और मुंह बिचकाती बोली थी—'हाउ स्वीट जस्ट लाइक हनी'

एक दिन वह बोली थी—'पढ़ाओगे नहीं? क्या लिखती है तुम्हारी रूपवती पत्नी इतने लम्बे लम्बे पत्रों में?' और फिर दूसरे क्षण खुद प्रतिवाद

कर बैठी थी 'छोड़ो भी, प्राइवेट बातें लिखती होंगी। किसी की प्राइवेट जिन्दगी में दखल नहीं देना चाहिये।'

जिंदगी के इस सफर में हम अचानक मिल गये थे। और एक दूसरे के घनिष्ट मित्र और आत्मीय से बन गये थे। बात यह हुई थी कि विश्वविद्यालय की तरफ से मुझे 250 रुपये मासिक की रिसर्च स्कालरशिप मिली थी। तदनुसार दिल्ली जाकर अपने विषय पर शोध कार्य करना था। मैं चिंतित था कि दिल्ली बम्बई जैसे महानगर में 250 रुपये से कैसे गुजारा होगा। इतने रुपये में तो वहां ढंग का रहने लायक एक कमरा ही मिल पाता है। यही जिक्र जब मैंने अपने विभागीय अध्यक्ष से किया तो मुझे आश्वासन देते हुए अपने एक मित्र के नाम पत्र लिखकर दिया कि मैं उनसे मिलूं—'वे बड़े नेक व्यक्ति हैं। मेरा संदर्भ दोगे तो वे तुम्हारी मदद जरूर करेंगे।'

वे दिल्ली विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्राध्यापक थे। जब दिल्ली आकर उनसे मिला तो वे न अच्छे मददगार साबित हुए बल्कि तुरंत ही आत्मीय भी बन गये। तीन चार कमरों का उनका एक मकान था और ऊपर बरसाती थी। किराये की एक मामूली रकम पर उन्होंने मुझे वह बरसाती ठहरने के लिये दे दिया जोकि गंभीर चिंतन मनन लेखन अध्ययन के लिये सर्वथा अनुकूल था। इससे पहले बरसाती में वही रहती थी। अब उसे नीचे का एक कमरा दे दिया गया था। वह प्रोफेसर साहब की दूर के रिश्ते से कोई लगती थी और विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में ही काम करती थी। कुछ दिनों तक यह बात उसे खटकी भी थी, लेकिन खटक कर गले में अटंग कर रह गई थी।

अजीब ही संयोग था कि वह भी मेरी मददगार ही बन गई। किसी औपचारिकता का निर्वाह न करते हुए भी वह मेरी मांग की किताबें तुरंत मेरी मेज पर भिजवा दिया करती थी। कभी-कभी अपने ही 'रिस्क' पर मेरे लिये कई किताबें घर भी ले आती थी। अपने लिये जब कैंटीन से चाय या काफी मंगाती तो एक प्याला मेरी मेज पर भी भेज देती थी। प्रतिफल मैं भी जब किताबों से ऊबकर थोड़ी देर के लिये कैंटीन में चाय काफी पकौड़े लेने उठ जाता तो उससे भी एक आग्रह जरूर

कर लेता था। अधिकतर शालीन अंदाज में वह 'थैंक्यू' कहकर रह जाती थी, लेकिन कभी-कभी साथ भी हो लेती थी। हम एक दूसरे के अच्छे मित्र बन गये थे। इससे वह बहत खुश थी मैं भी खुश था। किंतु अन्दर ही अन्दर एक दहशत से आक्रान्त था। कहीं इस मित्रता की परिणति वहीं जाकर तो नहीं होगी जैसा कि प्रायः होती है। क्योंकि कुछ बातें पिताजी ने मुझे तोते की तरह रटा दिया था। जब दालान की पढ़ाई छोड़कर गांव के पाठशाला में जाने लगा तो 'पर द्रव्येषु लोष्ठव्रत' और जब हाई स्कूल की परीक्षा पास कर शहर के कॉलेज में दाखिला लिया तो 'मातृव्रत परदारेषु' ऐसी ही कितनी उक्तियों सूक्तियों को उद्धृत कर उन्होंने मेरी समस्त चेतना में ठूंस दिया था। इतने ही से वे संतुष्ट नहीं हुए थे और अभी कॉलेज में दाखिला लिये छह महीने भी न बीते थे कि पिता जी का पत्र आ गया था 'यह आयु बड़ी पेंचीदी होती है। न जाने कब मन किधर भटक जाये। खासकर शहरों में जहां लड़के लड़कियां साथ-साथपढ़ा लिखा करते हैं, आते जाते हैं, उठते बैठते हैं। शादी-विवाह सही उमर में हो जाना ही अच्छी होती है।' और प्रथम वर्ष का इम्तहान दूं इससे पहले मैं पति बन गया था।

इस बार जब गांव से उस महानगर में आने की नौबत आई तो पिताजी को कोई शक-सुबहा नहीं था। मगर पत्नी को एक भय जरूर दबोचने सा लगा। अन्तिम रात की बात है। वह मुझसे चिपट कर बोली थी 'सुनते हैं बड़े-बड़े शहरों में सब कुछ खुल्लम खुल्ला होता है। कोई पर्दा मर्यादा बंधन नहीं होता। कहीं आप भी...'इसके आगे वह बोल नहीं पायी थी। मगर वह क्या कहना चाहती थी मेरी समझ में आ गया था। उसके ऐसे सन्देह पर मुझे हंसी भी आ गयी थी। उसकी कमर में चिहुंटी काटते हुए मैंने कहा, 'धत पगली कहीं के।'

वह और भी सिमट कर बोली थी, 'एक वचन देंगे? मैंने पूछा था—'क्या'

'आपके तन मन पर मेरा और सिर्फ मेरा अधिकार है। किसी और को कभी छूने भी न देंगे।'

उसके शब्दों में ऐसी भाव प्रवणता थी मैं उसे केवल मखौल या

मजाक के तौर पर ग्रहण नहीं कर सका। मेरे मुंह से निकल गया 'क्या तुम्हें मुझ पर इतना भी विश्वास नहीं?'

'विश्वास तो है ही–फिर भी पुरुष का क्या ठिकाना।' अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया था–'विश्वास रखो इस तन पर इस मन पर सिर्फ तुम्हारा और तुम्हारा ही अधिकार है। कभी किसी को इस तन मन के पास भटकने भी न दूंगा।' और वह पूरे आवेग और आवेश से मुझसे लिपट गई थी।

जब से यहां आया हूं हर हफ्ते दो तीन पत्र पत्नी के आ ही जाते हैं। गुदगुदी पैदा करने वाली बातों से भरी। शायद ही कोई सुशिक्षित आधुनिका प्रेमी भी ऐसी रस भरी भीनी-भीनी बातें अपनी प्रियतम को लिख पायेगी–कविता, दोहे, विद्यापति के गीत से लेकर आधुनिक गीत से भरे...

'मलयानिल चहुं ओर सिधारल
पिया निज देश नहिं आयल रे'

× × ×

'परदेश गईल विकराल भईल
कचनार का फूल भोकरार भईल

× × ×

और कभी कभी प्रतीक्षातुर पंक्तियां
'मोरा रे अंगनवां चन्दन केर गछिया
ताहि चढ़ि कुढ़य काग रे
सोना केर पिंजरा मढ़ाय देबौऽकागा
जौं पिया आओत आइ रे।'

रात को सोते वक्त पत्नी के पत्रों को दुबारा पढ़ने की आदत सी हो गई थी। एक रोज वह चुपके से देख बैठी और मुझ पर व्यंग्य कसने लगी थी, 'बाजार से 'पेस्ट' लाके छाती से ही चिपका क्यों नहीं लेते इन पत्रों को।'

गर्मी की छुट्टी हो गई थी। प्रोफेसर साहब सपरिवार हिल स्टेशन चले गये थे। वह भी छुट्टी लेकर घर चली गई थी। पूरे मकान में

मैं अकेला रह गया था। इस तरह अकेला हो जाने का दुख भी और साथ ही साथ खुशी भी कि इस अकेले पन में अपने शोध विषय पर ज्यादा ध्यान केंद्रित कर पाऊंगा। मगर तीन रोज बाद ही वह लौट आयी थी। मैंने पूछा था—'क्यों चली आई?'

'यों ही मन नहीं लगा। तब ख्वामख्वाह छुट्टी बर्बाद करने से क्या फायदा।'

छुट्टी रद्द करवा कर वह लाइब्रेरी जाने लगी थी। पहली ही शाम की बात है। वह अपनी ड्यूटी पूरी कर मेरे पास ही सरक आई थी और बोली 'क्यों बहुत सीरियस टापिक में लगे हो? कल नहीं कर सकते? मैं अकेले जाकर बोर हो जाऊंगी।' यद्यपि मैं अति गंभीरतापूर्वक अध्ययन में डूबा हुआ था। उसका खिंचाव या आकर्षण, गंभीरता को त्याग कर उसके साथ ही निकल गया। यह सरासर मेरी कमजोरी या बेवकूफी थी। हम देर रात तक शहर के मुख्य बाजार के इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहे। अच्छे रेस्तरां में साथ-साथ खाना खाया। ऐसा कुछ भी नही हुआ जो किसी भी दृष्टि से अमर्यादित अनुचित या अनैतिक हो। बातें करते हुए हम घर लौटे। जब मैं बरसाती की सीढ़ियां चढ़ने लगा तो वह बोली, 'मैंने तुम्हें झूठ मूठ का डिस्टर्व कर दिया। कल से डिस्टर्व नहीं करूंगी। अगर अकेले घर में मन नहीं लगेगा तो लाइब्रेरी में ही बैठी रहूंगी जब तक तुम बैठे रहोगे।'

दूसरे दिन ऐसा ही हुआ था। जब लाइब्रेरी से बाहर आया तो लाइब्रेरी के लॉन में बैठी वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। हमने साथ-साथ खाना खाया और घर आ गये। उसी के कमरे बैठ ढेर सारी बातें करते रहे। साहित्य राजनीति से लेकर फिल्म तक अपनी दिक्कतों से लेकर परिवार की परेशानी तक। बातें करते-करते वह बोल पड़ी—'तुम्हारे ओठ बहुत लाल हैं। जानते हो मेरे छोटे भाई के भी ओंठ ऐसे ही लाल थे। भाभी हमेशा मजाक किया करती थी जिसके ओठ लाल होते हैं, पत्नी उसे बहुत प्यार करती है। तभी तो तुम्हारी पत्नी तुम्हें इस कदर प्यार करती है।' अकस्मात् ही वह मेरे ओठों को छू गई थी। मेरा सारा बदन सिहर गया था। वह बोली थी 'जाओ सो जाओ सुबह फिर उठना है।

क्या फायदा बेकार के रात्रि-जागरण से...' और मैं काठ सा बना कमरे से बाहर निकल गया था।

फिर तो रोज की रुटिन बन गई थी। और जब मैं उसके कमरे से निकलकर ऊपर आता तो मन कुलबुलाता रहता। पत्नी की रसभरी मीठी मीठी बातों से भरी चिट्ठी पढ़ता तो स्वयं को कोसता। इतना भी सम्पर्क ठीक नहीं है, उचित नहीं है, अपनी पत्नी के प्रति विश्वासघात है। उसके भोले स्वच्छ पुनीत हृदय के साथ खिलवाड़ है, पिताजी द्वारा बचपन से रटायी गई सीख का उल्लंघन है। हर रोज निश्चय करता कि कल से इस सम्पर्क सूत्र को तोड़ दिया जाय। किसी न किसी बहाने उससे मिलने को भी टाला जाये। मगर हर शाम यह निश्चय टूट जाता और फिर उसी अध्याय की पुनरावृत्ति हो जाती। लेकिन उससे आगे हम बढ़ नहीं पाते थे। मुझ पर मेरा संस्कार हावी हो जाता था, पत्नी को दिया गया वचन छेदता रहता था। वह भी नारी उचित मर्यादावश कुछ बोल नहीं पाती थी। मगर उस रात वह काफी आगे बढ़ गई थी। मैं भी स्वयं को काबू में नहीं रख पाया था। मेरी अंगुलियां बहकने लगी थी। उसने कहा था—'किवाड़ तो लगा दो।'

बड़ी मुश्किल से मैं उसके सान्निध्य से उठ पाया था। किवाड़ तक आया था। दरवाजा बन्द करने पर ठिठका था सहमा था, पत्नी की याद आई थी। पिताजी की सीख याद आई थी और सहमते लड़खड़ाते मैं कमरे से बाहर निकल कर फटाफट सीढ़ियां चढ़ गया था। मेज पर पत्नी का पत्र यों ही पड़ा था

'दर्द रह रह के करवट बदलता रहा

...

आस फागुन में फूलों की रोती रही

...

पीड़ ओठों पर आ थरथराई बहुत

...

तुम न आये मगर याद के चन्द्रमा'

पत्र पढ़ते पढ़ते ही में चारपाई पर पसर गया। लेकिन पसरते ही

एक अजीब ही बेचैनी अजीब ही आकुलता मुझे परेशान सी करने लगी। लगा कि इस बेचैनी को इस समय मैं नहीं झेल पाऊंगा। पिताजी द्वारा रटाया गया श्लोक, पत्नी को दिया गया वचन इस बेचैनी को नहीं दबा सकेंगे। मैं एक बारगी चारपाई से उठ खड़ा हुआ और चट पट सीढ़ियां उतर गया। उसके कमरे का दरवाजा खुला था। बत्ती गुल थी और वह ड्रेसिंग टेबल के सामने खड़ी थी। अंधेरे में मैंने जो कुछ देखा उससे भौचक्का सा रह गया। उसके गाल आंसूओं से तरबतर थे। मुझ पर नजर पड़ते ही वह बमक पड़ी 'अब क्यों आये हो मेरे पास? फौरन चले जाओ यहां से। तुम्हें क्या अधिकार है इस तरह मुझे लांछित अपमानित एवं तिरस्कृत करने का? तुम अव्वल दर्जे के पाखंडी और स्वार्थी हो। आज तक मुझे केवल अपने मन बहलाव की चीज समझते रहे। जब तुम्हारा मन बहल जाता है तो भाग खड़े होते हो। मैं समझ गई तुम्हारी चालाकी। मुझे और तंग करने की कोशिश मत करो।' गाल पर आंसूओं की धारा और भी तेज हो गई थी—'मैंने तुमसे कुछ नहीं मांगा था। न पत्नी का अधिकार न प्रेमिका का प्यार...सिर्फ इतनी ही चाह थी कि मैं प्रकृति हूं तुम पुरुष...इस नाते...' और वह फफूक कर रोने लगी थी।

हिलकोरें मोती झील में

डॉ. सोनाली होस्टल के वार्डन के पद से त्याग पत्र देकर चली गई। त्याग पत्र अचानक ही उसने दे दिया। इसलिये सभी अचम्भे में पड़ गये। सभी की अपनी अपनी प्रतिक्रिया है राय है। किंतु होस्टल की लड़कियां चिंतित सी हो गई—पता नहीं अगली वार्डन कैसी होगी? डॉ. सोनाली जब तक थी, बहुत आजादी थी। वे शाम को देर से लौटती, तो भी कोई आपत्ति नहीं थी। यहां तक कि 'वीक एण्ड' पर कई लड़कियों के 'बाय फ्रेण्ड' भी आते थे, डॉ. सोनाली ने कभी किसी को न रोका न टोका। इसी बात को लेकर कई प्रोफेसर डॉ. सोनाली के विरुद्ध प्रिंसिपल के कान भर चुके थे और इसी विषय पर डॉ. सोनाली की झड़पें भी कई बार प्रिंसिपल से हो गई थी। संभव है उन्हीं कान भरने वालों ने उसे त्यागपत्र देने को विवश कर दिया हो?

डॉ. सोनाली के पति एक होनहार खदान इंजीनियर थे। खदान दुर्घटना में सात महीने पहले अचानक उनकी मृत्यु हो गई थी। तब से डॉ. सोनाली के जीने की राह ही बदल गई। सभा सोसायटी में आना-जाना बन्द कर दिया। हमेशा अपने आप में खोयी खोयी सी रहती। कॉलेज और अस्पताल के कामों में जुटी रहतीं और जब वक्त मिलता तो पेंटिंग मे लग जातीं जैसे तूलिका को ही अपना जीवन साथी बना लिया हो। मगर तीस बरस की चढ़ती जवानी। शहर के कई विशिष्ट लोग उसके इर्द-गिर्द मंडराने लगे थे। मंडराते भी क्यों न? सीधी सादी पोशाक और साधारण ऐंठी चोटी के बावजूद वह लोगों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेती। रंग न गोरा न सांवला, कद न लम्बा न ठिगना, शरीर

न भारी न हल्का, आवाज न मीठी न तीखी, आंखें न चुभीली न कटीली, होठ न पतले न मोटे न लाल न काले। मुख पर एक सौम्यता गंभीरता शरीर में एक विचित्र सा कटाव, चाल मे अपने ढंग की एक थिरकन, बातों में शिष्टता विनम्रता, व्यवहार में एक अनोखा माधुर्य। कई लोगों ने सहानुभूति जतलाकर अतिशय आत्मीयता दिखाकर उसके नजदीक आने की कोशिश किया था। लेकिन उसने बड़े मृदुल भाव से सभी को ठुकरा दिया। अपने पास भटकने भी नहीं दिया। वह इस तथ्य से वाकिफ हो चुकी थी कि जो उसके नजदीक आना चाहते हैं उनमें से किसी को अब प्रेमिका या पत्नी की तलाश नहीं है, उन्हें तलाश है सिर्फ ऐसी औरतों की जिनकी जबान देह की चादर वे जब चाहें अपनी पलंग पर बिठा लें। जिस तरह पोखरे में गिरे घायल कबूतर को पकड़ने सभी लपकते हैं इसलिये नहीं कि कबूतर घायल है, दर्द से कराह रहा है, उसे एक शरण की जरूरत है, बल्कि इसलिये कि कबूतर का मांस अच्छा होता है, वह घायल है, उड़ नहीं सकता है, आसानी से पकड़ा जा सकता है। उसकी तरफ भी लोग इसलिये लपकते है कि वह पतिहीन है, मांसल है, अच्छी तरह दबायी जा सकती है। मगर डॉ. सोनाली की अपनी राय है—बगैर मन की परतों को खोले, मन की दूरी तय किये बगैर, तन की परतों को उधेड़ना, तन की दूरी तय कर लेना एक छिछलापन है। ऐसा छिछलापन डॉ. सोनाली को स्वीकार नहीं।

आज जब डॉ. सोनाली होस्टल से दूर शहर के एक संभ्रान्त इलाके में एक स्वतंत्र फलैट किराये पर लेकर चली गई तो सभी का एक ही अनुमान 'कोई पुरुष उनकी आंखों में चढ़ गया होगा।' वह पुरुष कौन है? यह किसी को पता नहीं। किंतु सुनील को आज शाम डॉ. सोनाली ने अकेले इस फलैट में बुलाया है। सुनील के अतिरिक्त और किसी को निमंत्रण नहीं।

बन ठन कर सज संवरकर अपनी वेशभूषा को बार-बार जांच परखकर, व्यक्तित्व को सर्वरूपेण निखारकर सुनील के पैर सड़क की दूरी तय करने लगे हैं। मगर मन अतीत की दूरी तय करने लगा है।

बींचो बीच सड़क गुजरती है। सड़क की एक तरफ लड़कों का

होस्टल और दूसरी तरफ ऊंची चहार दीवारों से घिरा लड़कियों का होस्टल। होस्टल के नुक्कड़ पर ही वार्डन का डेरा। ठीक सड़क के किनारे एक खूबसूरत पार्क, पार्क के बीचों बीच एक छोटा सा तालाब और तालाब के चारों तरफ फूल ही फूल। चांदनी रात थी। लिखित परीक्षा खत्म हो गयी थी। अब केवल प्रायोगिक और मौखिक परीक्षा शेष रह गयी थी। महीनों से बंद कमरे में परीक्षा की तैयारी करते करते सुनील का मन घुटन से भर गया था। होस्टल के अधिकांश लड़के शहर के सिनेमाघरों में घुस गये थे और वह सौम्य चांदनी रात में तालाब के पास चला आया था। यों लिखने पढ़ने की इच्छा तो हमेशा रहती है। मगर दैनिक जीवन इतना व्यस्त रहता है कि कहानियों कविताओं के लिये समय ही नहीं मिल पाता। और अब जब परीक्षा खत्म हो गई है तो इसी उधेड़बुन में पड़ा था कि क्या क्या लिखा जाये, कैसे कैसे लिखा जाये, प्लाटों को मन मस्तिष्क में उतार कर पात्र और परिवेश से बातें करते हुए वह पोखरे के चारों तरफ टहल रहा था कि अचानक उसकी नजर डॉ. सोनाली पर जा पड़ी। पानी के किनारे तीन वर्ष के बेटे पप्पू को पास में बिठायी वह साधनारत बैठी थी। श्वेत शुभ्र परिधान पर लम्बे-लम्बे काले काले बिखरे बाल चांदनी रात में एक अजीब ही सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा था। सुनील क्षण भर के लिये ठिठक सा गया। क्या सोचेंगी डॉ. सोनाली। मगर उसे लगा कि डॉ. सोनाली की भी नज़र उस पर पड़ गई है। तब अगर वह शर्म के मारे कन्नी काटकर निकल जाये तो यह और भी बुरी बात होगी, वह डॉ. सोनाली के पास ही चला आया था। डॉ. सोनाली का भी ध्यान भंग हो गया था। पप्पू को पकड़े वह भी उठ गई। नजदीक आकर बड़ी नम्रता से सुनील ने नमस्ते किया। उत्तर में सोनाली मुस्कुरा उठी 'क्यों परीक्षा खत्म होने का जश्न मना रहे हो?'

सुनील शर्मा गया था।

'क्यों कैसा रहा इम्तहान'

'ठीक ही है।' सुनील ने सकुचाते हुए कहा।

डॉ. सोनाली आगे बढ़ गई। सुनील भी पीछे हो लिया। [illegible] भर

डॉ. सोनाली कुछ न कुछ पूछती रही। बड़ा आत्मीय सा लगा डॉ. सोनाली का ऐसा व्यवहार। गेट के पास सुनील रुक-सा गया। विदा लेने के लिये डॉ. सोनाली को पुनः नमस्ते कर ही रहा था कि डॉ. सोनाली कह बैठी, 'आ जाओ आ जाओ।'

नमस्ते के प्रयत्न में जुड़े सुनील के हाथ थम गये, रुके पांव आगे बढ़ गये। बड़ा कलात्मक सुरुचि सम्पन्न ढंग से सजा था डॉ. सोनाली का कमरा। मेज पर कई किताबें बिखरी पड़ीं थीं। पास ही एक बड़ी मेज पर ड्राइंग के कई तख्ते पड़े थे। डा. सोनाली उठकर अन्दर चली गई तो सुनील पप्पू को दुलारने पुचकारने लगा था। बड़ा सलोना मुखड़ा था उसका। बड़ी मासूमियत अंदाज में पप्पू ने कहा, 'अंकल अंकल देखो मम्मी ने पापा का कितना अच्छा फोटो बनाया है। इस बार पापा आयेंगे तो मेरे लिये ढेर सारी चीजें लायेंगे। बहुत दिनों बाद आयेंगे।' निस्संदेह अपने पति का पोर्ट्रेट बहुत ही अच्छा खींचा था डा. सोनाली ने। लेकिन पप्पू की मासूमियत से उसका मन द्रवित सा हो गया। थोड़ी देर बाद ही डा. सोनाली आई तो हाथ में काफी का प्याला। आदरसूचक मुद्रा में उठकर सुनील ने उसके हाथ से काफी का प्याला ले लिया।

काफी सुरकती डॉ. सोनाली बोली 'सुना है तुम कविता बगैरह भी करते हो?'

सुनील लजा सा गया। कुछ उत्तर देते नहीं बना।

डा. सोनाली के ओठों पर फिर मुस्कान की रेखा खींच गई।

'शर्मा गये?'

'अभी तो प्रयास करता हूं।' शर्माते हुए सुनील ने कहा।

'कभी सुनाओ, मुझे भी कविता में अत्यधिक रुचि है।'

काफी पीकर जब वह जाने लगा था तो डा. सोनाली बोली थी, '...आते जाते रहना कोई दिक्कत हो तो बताना।'

डा. सोनाली के ऐसे मृदु आत्मीय स्वभाव से वह पसीज सा गया था। पहली बार डा. सोनाली के व्यक्तित्व के इस दूसरे पहलू को देख पाया था कि वह एक कुशल डाक्टर ही नहीं एक संवेदनशील कलाकार भी हैं। कलाकविता के प्रति उसकी इसी रुचि ने उसे डा. सोनाली के

प्रति आकर्षित कर दिया था।

इस मुलाकात के तीसरे ही दिन की बात है। प्रायोगिक परीक्षा में सुनील नर्वस सा हो गया था। संयोग की बात थी कि वह पेपर डा. सोनाली के अधीन ही था। सुनील ने सोचा क्यों न इस संक्षिप्त सी जान पहचान का फायदा उठा लिया जाय। तदर्थ वह डा. सोनाली से मिला तो उसने ढांढस बंधाते हुए कहा, 'मत घबराओ मैं देख लूंगी।' डा. सोनाली के कथन में ऐसा आत्म विश्वास भरा था कि सुनील की दुश्चिंता ही दूर हो गई थी। फिर तो यदा कदा डॉ. सोनाली पोखरे के पास मिल जाती या वह यों ही आदर से अनुप्राणित होकर डा. सोनाली के पास चला जाता। डा. सोनाली धीरे-धीरे खुलने लगी थी। खूब जमकर बातें होती—व्यक्तिगत भी कला कविता की भी। बड़ी खुशी से डा. सोनाली ने अपनी पेंटिंग्स सुनील को दिखाया था—'परकटा कबूतर' एक कबूतर जिसका पर कट चुका है, आकाश में उड़ते उड़ते गिरने को हो रहा है और चारों तरफ से गिद्ध उसे लपकने के लिये तैयार हैं...'बाढ़' जोरों की बाढ़ आई है। प्राणी बाढ़ में बहा जा रहा है, तिनके का भी कहीं सहारा नहीं मिलता। बार-बार प्रयत्न करने पर भी प्राणी किनारे नहीं लग पाता। एक बार किनारा लग भी जाता है तो देखता है तो एक हिंसक जानवर किनारे पर भी घात लगाये बैठा है और प्राणी पुनः बाढ़ के बहाव से स्वयं को जोड़ लेता है...

सबसे अच्छी लगी थी वह पेंटिग जिसका शीर्षक डा. सोनाली ने 'नीरभरी दुख की बदली' दिया था। लगा था डा. सोनाली ने महादेवी के इस गीत के सम्पूर्ण भावों को कैनवस पर उतार दिया हो या अपने अन्तर्मन को दर्द भरे रंगों में घोलकर तूलिका से कैनवास पर उतार दिया हो। निस्संदेह सभी पेंटिग डा. सोनाली के उस दर्द के चित्र थे जो भोगने के लिये वह अभिशप्त कर दी गई थी। यों डा. सोनाली बातें खूब करती, कभी-कभी ठहाका मारकर हंस भी लेती, पर लगता उसकी आंखों के कोरों में एक अमिट दर्द समाया हुआ है जो उसके लाख छिपाने से भी छिप नहीं पाता। सुनील आंखें के कोरों में समाये उस दर्द को महसूस करता तो तन मन तरल हो जाता, पसीज जाता।

डा. सोनाली ने अपनत्व उड़ेल ही दिया था और व्यक्त किये बगैर सुनील भी अपनी सम्पूर्ण संवेदना उड़ेल देना चाहता था। इस अतिशय निकटता ने सुनील को अचेतनावस्था में ही सम्बन्ध के एक नये क्षितिज से परिचय करा दिया था। सुनील जब भी जाता डा. सोनाली अपने हाथ से काफी बनाती, काफी के प्याले में डूबी देर तक कला कविता की चर्चा होती। सुनील को जैसे डा. सोनाली के पास से उठने की इच्छा ही नहीं होती। जब विवश होकर वह अपने पांवों को डा. सोनाली के कमरे से बाहर कर देता, लड़खड़ाते कदमों से होस्टल की ओर जाने लगता। कभी पीछे मुड़कर देखता तो अनुभव होता कि डा. सोनाली दरवाजे पर ही खड़ी है और उसी को घूर रही है। यह एहसास ही उसे इस कदर रोमांचित कर जाता कि...

रात में देर तक नींद नहीं आती। फिजूल फिजूल बातों के ज्वार भाटे उठते। सुनील सोचता यह सब केवल उसके मन का फितूर है, उसकी कमजोरी है, ऐसा कभी नहीं हो सकता। डा. सोनाली उसकी शिक्षिका है। उसके सम्बन्ध में ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिये। वह आत्मग्लानि से भर जाता, स्वयं को कोसता, अपनी कमजोरी पर नियंत्रण पाने की कोशिश करता कि अब वह डा. .सोनाली के पास कल से नहीं जायेगा। हर शाम उसके निश्चय का पुल आवेग की बाढ़ से टूट जाता। एक बार तो वह बिल्कुल निश्चय कर चुका। तरह-तरह से स्वयं को बहला लेगा। शहर सिनेमा ही चला जाया करेगा। मगर डा. सोनाली से मिलने नहीं जायेगा।' और लगातार तीन दिन डा. सोनाली से नहीं मिला। चौथी शाम डा. सोनाली पप्पू का हाथ पकड़ी उसके कमरे में चली आई 'क्यों तबीयत तो ठीक है न?'

अपने कमरे में डा. सोनाली को पाकर सुनील चौंक सा गया। बड़े गौर से डा. सोनाली की आंखों के भावों को पढ़ा जैसे कह रही हो, 'तुम तीन दिन तक नहीं आये। इसलिये मैं खुद चली आई।'

थोड़ी देर बैठकर डा. सोनाली चली गई थी। किंतु सुनील को लगा कि डा. सोनाली के उसके कमरे में आने से केवल उसका कमरा ही सुरभित नहीं हो गया है सारा अस्तित्व ही महक गया है। उस रात

उसे बिलकुल नींद नहीं आई। रात भर अपनी नोट बुक पर 'सोनाली' 'सोनाली' लिखकर काटता रहा था।

उस रात पिकासो की एक कृति पर चर्चा छिड़ गई थी। चर्चा करते करते वे काफी थक गये थे। ऊंघते हुए पप्पू ने कहा था 'मम्मी मुझे सुला दो।'

'बेटा तू सो जा। मैं अंकल से बातें कर रही हूं।' लेकिन पप्पू जिद पकड़ चुका था 'आप भी सोयेगी तभी मैं सोऊंगा।'

और पप्पू को छाती से चिपकायी डा. सोनाली पसर गई थी। पसरते ही डा. सोनाली के सुडौल शरीर की कमनीय कलात्मकता शरीर का हर पोर, कमर की वक्रता, जांघ की ऊंचाई नीचाई झलकने लगी थी। डा. सोनाली को इस स्थिति में पसरी देख सुनील का सारा अस्तित्व ही सन सना सा गया था। पसलियों में एक तरलता सी भर आई थी। लगा कि इस स्थिति को वह झेल नहीं पायेगा। वह सोफे से उठने लगा था। तभी डा. सोनाली बोल पड़ी 'क्यों बोर हो गये? अभी आई।'

डा. सोनाली की इस उक्ति ने उसकी पसलियों को और भी तरल कर दिया था। पप्पू को नींद में डूबते ही डा. सोनाली ने अंगड़ाई लिया और अपना हाथ सुनील की ओर बढ़ा दिया। मगर बढ़ा हुआ हाथ सुनील तक नहीं पहुंच पाया। किंतु डा. सोनाली की इस उन्मादक अंगड़ाई ने सुनील को और बेचैन कर दिया था। वह सोफे से उठकर लड़खड़ाते लड़खड़ाते दरवाजे तक आया और ठिठक सा गया जैसे कोई शक्ति उसके पांवों को अन्दर खींच रही हो, बाहर जाने से रोक रही हो। तभी डा. सोनाली झटके से पलंग से उठी। जल रहे लैम्प को आफ कर दिया और एक बारगी सुनील के हाथों को अपने हाथों में लेकर बोली .'मैं तुम्हारे चेहरे पर खुद गये भावों को पहचान गयी हूं। क्यों खुद बेचैन हो रहे हो और मुझे भी बेचैन कर रहे हो?'

इसके आगे न सुनील कुछ बोल पाया था और न डा. सोनाली ही...।

जीवन में प्रथम बार एक नारी का इतना भीगा भीगा स्पर्श हृदय का प्यार...तन मन का दुलार सुनील की चेतना को अभिभूत कर दिया

था और लम्बे अंतराल के बाद एक पुरुष के गहन प्यार का स्पर्श डा. सोनाली को भी आनन्द से आप्लावित कर दिया था। फिर तो...

लेकिन होस्टल में रहकर रोज-रोज उस तरह मिलना। खासकर वह होस्टल की वार्डन थी। उसकी एक नैतिक जवाबदेही भी थी। इसलिये डा. सोनाली ने होस्टल छोड़कर शहर के संभ्रान्त इलाके में एक मकान ले लिया था।

लेकिन यह बात अधिक दिनों तक छिपी नहीं रह सकी। कुछ महीनें बाद ही लोगों ने हंगामा मचा दिया था—'जवानी की आग में डा. सोनाली ने एक मासूम लड़के को बहका दिया है। वासनापूर्ति के लिये एक होनहार डाक्टर के तन मन से खिलवाड़ कर रही है। एक शिक्षिका और छात्र के बीच ऐसा सम्बन्ध...।'

और सचमुच ही डा. सोनाली अत्यन्त ही कातर स्वर में बोली थी 'हमारी स्थिति अभी भी इस समाज में दूसरे दर्जे की है। एक पुरुष प्रोफेसर भले ही सेशन में अधिक अंक देने के बहकावे में लाकर एक छात्रा से बलात्कार करता रहे, एक साठ वर्षीय प्रोफेसर एक सोलह वर्षीय छात्रा से शादी कर ले तो भी वह समाज में सम्मानित जिंदगी जी लेता है, सर ऊंचा उठाकर चलता है। मगर एक औरत किसी पुरुष से सही अर्थों में समर्पित प्यार करे तो समाज की दृष्टि में वह अपराध होता है, वह सर ऊंचा उठाकर नहीं चल सकती।'

और सचमुच में ही कुछ लोगों ने इस सम्बन्ध को इस तरह प्रचारित प्रसारित कर दिया था कि डा. सोनाली का जीना दूभर हो गया था। एक दिन डा. सोनाली प्रोफेसर के पद से त्यागपत्र देकर चली गई। तराई के एक गांव में छोटा सा क्लीनिक खोलकर प्रैक्टिस करने लगी। डा. सोनाली के इस तरह चले जाने से सुनील का तन मन सिर्फ आहत ही नहीं हुआ, अपितु, मानसिक स्थिति भी विक्षिप्त सी हो गई थी। मगर तुरंत ही डा. सोनाली का खत आ गया था। टूटते तन मन को राहत मिली थी। डा. सोनाली बार बार आती जाती रहती और मौका मिलते ही सुनील भी तराई के गांव की ओर हो लेता। प्रेम बरकरार रहा। सम्बन्ध जारी रहा...

मगर कुछ साल बाद ही सुनील को ऐसा लगा कि डा. सोनाली के प्रेम में अब उतना उन्माद नहीं रहा, समर्पण में अब वह विह्लता नहीं रही। लगता है वह पहुंच जाता है इसलिये उसका मन रखने के लिये वह तैयार हो जाती है। कई बार डा. सोनाली खुद अपने मुंह से कह बैठी—'तुम अब शादी क्यों नहीं कर लेते।' सुनील को लगता जैसे बीच चौराहे पर भरी भीड़ में किसी ने उसके गाल पर तमाचा मार दिया हो। डाक्टरी की पढ़ाई पूरी हो गई थी। शादी के लिये ऊंचे घरानों के लोग उसके आगे पीछे मंडराने लगे थे। पिताजी भी बार-बार आग्रह कर रहे थे। मगर सुनील हर प्रस्ताव को टरका देता था। उसे लगता कि वह डा. सोनाली के अलावा किसी और लड़की को प्यार नहीं क़र पायेगा, किसी और लड़की के प्रति उत्तेजित भी न हो पायेगा।

मगर डा. सोनाली में काफी परिवर्तन आ गया था। प्रैक्टिस पेंटिग के अलावा वह समाज सेवा की राह में भी आगे बढ़ गई थी और इस तरह उलझ गई थी कि शरीर का धर्म ही गौण हो गया था...मगर सुनील...

भटकते भटकते आखिरकार सुनील ने शादी के प्रस्ताव पर सहमति दे ही दिया। बड़ी हंसी खुशी से कीमती उपहार लेकर डा. सोनाली शादी में उपस्थित हुई थी। शादी की समस्त रस्म अदायगी के समय वह सुनील के साथ ही थी और दुल्हिन को उस तरह थामे थी जैसे कि वह उसकी कोई नजदीकी सहेली बहन या भाभी हो। सारी रस्म अदायगी के बाद जब वर-वधू को रनिवास मे ले जाया जा रहा था तो डा. सोनाली सर से पैर तक घूंघट में लिपटी लाज से सिकुड़ी दुल्हन को थामे थी। रनिवास के चौखट तक पहुंचते-पहुंचते सुनील की आंखें डबडबा गई थी। सेहरा उठाकर उसने डा. सोनाली की ओर देखा था। लगा कि डा. सोनाली की आंखें भी छलछला गई हैं।

मकबरे महबूब के

यह तो उस लड़के की रोज की आदत हो गई थी। छः बजे उसका दफ्तर बन्द होता था। दफ्तर की सीढ़ियां उतरते ही वह गहन अन्तर्द्वन्द, में पड़ जाता था। इस समय क्या करे? वैसे करने को बहुत कुछ था। लेकिन घर जाने की इच्छा नहीं होती थी। किसे उसकी प्रतीक्षा है कि वह घर भागे? घर भी रहने लायक जगह हो तब तो? बगल के किरायेदार ऐसे कि उन्हें अभी तक परिवार नियोजन का पता ही नहीं। संख्या दहाई पर पहुंच रही है और कह रहे हैं भगवान भेज रहे हैं तो रुकावट क्यों डालें? इसलिये दफ्तर से बाहर निकलते ही वह बस स्टैण्ड की ओर भागने के बजाय कनाट प्लेस का चक्कर लगाता रहता था। यों भी दुकान साढ़े सात बजे तक खुली होती थी और आठ बजे तक दुकानों के इर्द गिर्द भीड़ रहती थी। आठ बजे तक का समय तो मजे से कट जाता था। उसके बाद दुकानों से कटकर भीड़ मध्य में स्थित वृत्ताकार पार्क के वृत्ताकार फव्वारे के पास आ जाती थी और वह भी फव्वारे के पास आकर पत्थर की शिला पर बैठ जाता था। बैठकर देखता रहता था शाम की रंगीनियों में खोये हुए जोड़ों को। वैसे सोचने को बहुत कुछ था। मगर उसके दिमाग में कुछ आता नहीं था। हमेशा एक ही बात मंडराती रहती थी सूखी रोटी, साधारण कपड़ा और मामूली-सा घर के अलावे जीवन का सारा सुख, जगत की सारी उपलब्धि उसके लिये शोकेस में रखी चीज ही तो हो गई है। जिसे वह पा नहीं सकता, भोग नहीं सकता, केवल आंखो से चाटकर ही अपनी प्यास बुझा सकता है।

कुछ दिनों से उसके सामने वाली शिला पर एक लड़की आकर

बैठ जाती थी। वह गुमसुम सी बनी सीरियस होकर बैठी रहती थी। शुरू शुरू में तो उसे लगा कि वह अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही है, मगर दस बजे तक वह अकेली बैठी रहती थी। कोई युवक उसकी तरफ भटकना भी नहीं था। हां कोई कोई मनचला उसकी तरफ आंख जरूर फेंक देते थे। वह लड़की बड़ी रहस्यमय सी लग रही थी। न जाने क्यों उससे बात करने के लिये वह उतावला सा हो रहा था। इसलिये कई दिनों से अपनी जगह से उठकर वह उस लड़की के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता रहता था, मंडराता रहता था। लेकिन लड़की इस तरह गुमसुम एकाग्रचित्त होकर बैठी रहती थी कि वह केवल मंडराता ही रह जाता था। अनजानी अन पहचानी लड़की को बेवजह वह भी रात में टोक कर उसकी एकान्तिकता में खलल डालना तो शिष्टाचार के विरुद्ध बात थी। लेकिन आज साहस कर उसने लड़की को टोक ही दिया—

'आपको कोई आपत्ति नहीं हो तो मैं यहां बैठ जाऊं?'

लड़की की बगलवाली शिला की ओर सरकते हुए लड़के ने पूछा।

लड़की कुछ बोली नहीं। मगर चेहरे को इस तरह घुमा दिया जैसे कह रही हो—क्या आपत्ति हो सकती है?

'धन्यवाद' कहते हुए लड़का वहीं बैठ गया।

'क्षमा करें, अगर आप बुरा न मानें तो आप से एक बात पूछ सकता हूं?'

लड़की के चेहरे का रंग एक बारगी बदल गया—'क्या?' 'कई दिनों से देख रहा हूं। आप रोज यहां आकर अकेली गुमसुम बैठी रहती हैं। क्या मैं वजह जान सकता हूं?'

लड़की चिढ़-सी गई, 'आपको इससे मतलब?'

लड़का डट सा गया, 'मतलब क्या हो सकता है। एक अनुभूति होती है। मैं भी यहां अकेला बैठा रहता हूं। उसकी एक वजह है। आप भी यहां अकेली बैठी रहती हैं निस्संदेह उसकी भी कोई वजह होगी।'

लड़की और चिढ़ गई, 'यह मेरा निजी मामला है। आप कौन होते हैं उसमें दखल देने वाले'

'मैं तो होता कुछ नहीं हूं। लेकिन संभव है मेरा निज आपके निज

से कोई सम्बन्ध रखता हो जिसे आप महसूस नहीं कर रही हों।'

'डायलाग तो आप अच्छा झाड़ लेते हैं। लेकिन मैं यह जान सकत हूं आपको मुझसे इतनी हमदर्दी क्यों हो रही है?'

'शायद मुझे भी आपकी सहानुभूति की जरूरत हो।'

लड़का ने तपाक से उत्तर दिया।

लड़की पराजित सी हो गई और चुप होकर बैठ गई। लड़का यं ही थोड़ी देर बैठा रहा। फिर शिला से उठ खड़े होते हुए बोला 'खेद है मैंने आपको डिस्टर्व कर दिया।'

लड़की के चेहरे का रंग फिर बदल गया, 'नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। आप बैठ जाइये।'

लड़का मुंह बनाकर बोला, 'बैठने से फायदा ही क्या? ख्वामख्वाह आपकी भी एकान्तिकता भंग होती है और मेरी भी।'

लड़की ने पुनः आग्रह किया, 'लेकिन आप बैठ जाइये।'

लड़के ने कहा, 'आप कहती हैं तो मैं बैठ जाता हूं।'

लड़की ने पूछा, 'आप हजारों की इस भीड़ में मेरे पास ही क्यों आये?'

'क्योंकि कई दिनों से देख रहा हूं—आप अकेली बैठी रहती हैं।'

लड़की मुस्कुराती बोली, 'अकेलेपन से फायदा उठाने के लिये।'

लड़के को यह प्रश्न बड़ा अटपटा सा लगा, 'सोचने को आप कुछ भी सोच सकती हैं। मगर न जाने क्यों आपसे एक अपनेपन की अनुभूति हो रही है।' लड़की इसका कुछ उत्तर नहीं दे पायी और चुप सी हो गई। लेकिन थोड़ी देर बाद फिर बोल उठी, 'जब तक आदमी की जिदंगी में कोई ट्रेजेडी नहीं होती है वह इस तरह सबसे अलग या कटा छंटा नहीं होता। अच्छी तरह महसूस कर रही हूं यह ट्रेजेडी मेरी जीवनी शक्ति को घुन की तरह खाती जा रही है। मन पर मस्तिष्क पर, दिल पर, दिमाग पर अतीत का एक ऐसा मुलम्मा चढ़ गया है जो उतरते नहीं उतरता। मैं उतारना भी तो नहीं चाहती। लगता है यह मुलम्मा ही तो मेरे व्यक्तित्व की निशानी है, छाप है जो मुझे भीड़ से अलग करती है। यह मुलम्मा उतरते ही मेरी जिन्दगी की विशिष्टता की हत्या हो

जायेगी और तब कितनी छटपटाहट होगी। लेकिन अगर जिंदगी जीना है तो इस मुलम्मे को उतार फेंकना ही होगा। मगर कैसे उतारूं, किस तरह उतारूं? बदन में चिपका कपड़ा तो नहीं कि उतार कर फेंक दूं, गले का हार तो नहीं कि उतार कर गंगा यमुना में ही फेंक दूं। जिस चीज से मारी गई हूं और जिंदगी पर जिसका असर किसी न किसी रूप में रहेगा, उसे आदमी भूल तो नहीं सकता।' बोलती बोलती लड़की रुक गई।

लड़का दार्शनिक लहजे में बोल पड़ा, 'अपने अतीत के प्रति यह मोह झूठा है, व्यर्थ है। मैं भी एक ट्रेजेडी से गुजर चुका हूं। मुझे भी इस ट्रेजेडी से एक अजीब प्रीति सी हो गई है। सांस सांस में उसी ट्रेजेडी की बदबू आती है। इच्छा होती है उस ट्रेजेडी को यहीं खत्म कर दूं, नये सिरे से जिदंगी की नींव डालूं, शुरूआत करूं। लेकिन सोचने और करने में भी तो अन्तर है ही। अतीत से आदमी इतनी जल्दी छुटकारा भी तो नहीं ले पाता।'

और फिर थोड़ी देर तक वे आपस में लड़ते-झगड़ते रहे थे। लड़की कह रही थी, 'आप पहले अपनी ट्रेजेडी सुनाइये।'

लड़का कहता, 'पहले आप सुनाइये।'

अंत में लड़के ने एक अकाट्य तर्क प्रस्तुत कर दिया।

'मैं आपके पास आया, आप मेरे पास नहीं आई। इसलिये पहले आपको सुनाना चाहिये।'

लड़की फिर सीरियस हो गई।

लड़के ने कहा, 'आप अपने मन को झूठमूठ का भारी कर रही हैं, जो चीज आपकी अपनी है, वही अगर आपको इतनी पीड़ा पहुंचाता है तो उस चीज को त्याग क्यों नहीं देती, दूसरे को क्यों नहीं दे देती। पूर्ण नहीं तो कुछ अंश भी दूसरे के पास चला जायेगा तो संभव है आपकी पीड़ा कुछ कम हो जाये और शायद मेरी भी।'

'किसी से प्रेम वेम...'

'हां इस उमर में दूसरी ट्रेजेडी क्या हो सकती है?

'आप भी किसी से?'

'हां'

'कौन थी।'

'कौन होगी। मैं उसे ट्यूशन पढ़ाता था। उसके छोटे भाई को बचपन से ही ट्यूशन पढ़ाता आ रहा था और इसी बल पर वह अच्छे अंकों से हर क्लास पास कर जाता था। इसलिये उसके परिवार में मेरी अच्छी धाक थी। जब उसे ट्यूशन पढ़ने की जरूरत हुई तो मुझे ही कहा गया। मैं उन दिनों एम. ए. फाइनल में था। वह पार्ट-1 में पढ़ती थी। और आप...?'

'मैं उन दिनों बी. ए. फाइनल में थी। भैया की बदली हो गई थी। भाभी को लेकर वे दूसरे शहर चले गये थे। ऊपर वाला कमरा खाली हो गया था। कुछ दिनों तक उस कमरे को अपना अध्ययन कक्ष बनाये रखी। फिर एक दिन पापा और मम्मी की कुछ बातें हुई और मुझे वह कमरा खाली कर देना पड़ा। उसी कमरे में वह आ गया था।'

'कौन था वह?'

'पापा की ऑफिस में काम करता था। पापा ने कहा था कमीशन में बैठा था। कमीशन मिला नहीं, सेक्सन ऑफिसर की जगह मिल गई।'

'उससे आप किस तरह जुड़ गई?'

'आप उस लड़की से कैसे फंस गये?'

'लड़की बड़ी भावुक थी, संवेदनशील थी। वह मुझसे प्यार करने लगी थी। अजीब ही प्यार था उसका। उन दिनों मैं और भी सस्ते और साधारण ढंग से रहता था। ट्यूशन करता था और पढ़ता था। तब रौब या चमक दमक से रह भी कैसे सकता था। एक दिन मेरे फटे जूते को देखकर कह बैठी 'आप बुरा न मानें तो एक बात कहूं, देखिये तो आपका जूता कितना गंदा और भद्दा दिखाई देता है।'

उसके इस प्रश्न पर मुझे गुस्सा आ गया, 'मैं तुम्हें अपने जूते की चमक दिखाने नहीं आया हूं। अपना ज्ञान देने आया हूं।' वह बहुत संयत स्वर में बोली, 'आप नाराज हो गये। मगर एक सवाल का जवाब देंगे? गुरु शिष्य के लिये आदर्श होता है। उसकी आदतें शिष्य के लिये ग्रहणीय होती हैं। जीवन में साफ सुथरा रहना जरूरी है—चाहे वह आपके

कपड़े हों या जूते या हाथ पैर। अगर आप इस तरह रहेंगे तो अपने शिष्य से साफ सुथरा रहने की आशा कैसे कर सकते हैं?' उसका तर्क सटीक था। मैं क्षेंप कर रह गया। कुछ उत्तर नहीं दे सका। निस्संदेह मुझे अपने रहन सहन में परिवर्तन करना पड़ा। लेकिन आपको उससे किस तरह प्रेम हो गया?' 'क्या बताऊं, बस समझ लीजिये, यों ही। चूंकि पापा मामूली क्लर्क थे, वह सेक्शन ऑफिसर था, इसलिये उसका विशेष आदर सत्कार होता था। पापा पर हमेशा उसका दबदबा बना सा रहता था। सुबह शाम की चाय पापा उसे अपने साथ ही पिलाते थे। यों तो सुबह शाम की चाय तो मैं ही बनाती थी। जिस रोज मम्मी बनाती थी उस रोज भी चाय का प्याला उसके सामने रखने वाली मैं ही होती थी। वह चाय की बड़ी तारीफ किया करता था। इसलिये उसे चाय बनाकर पिलाने में मुझे बड़ी दिलचस्पी थी। इसके अलावे एक और काम मेरे जिम्मे बंध सा गया था। मम्मी को इस बात से सख्त एतराज था कि टट्टी से कोई आये और नल छू ले। जब हम या पापा टट्टी जाते तो मम्मी बाहर प्रतीक्षा करती रहती थी कि कब हम बाहर निकलें और वह हमारे लिये नल खोल दें कि ताकि हम साबुन से हाथ धो लें। यों कभी कभार पापा भी उसका हाथ धुलवा देते थे, मगर अधिकतर मुझे ही उसका हाथ धुलवाना पड़ता था। हाथ धोकर वह हाथ को इस तरह झटकता था कि पानी की बूंदे मेरे कपड़ों पर फैल जाती थी। पता नहीं यह उसकी आदत थी या शरारत। मगर उस लड़की की ऐसी कौन-सी आदत थी जिससे आप इस तरह भींग गये?' 'उस लड़की की ऐसी कोई आदत नहीं थी। पहले ही बता चुका हूं वह भावुक थी। मैं एम. ए. फाइनल में पढ़ता था और साथ ही साथ कंम्पीटिशन की भी तैयारी कर रहा था। वह पूछ बैठी आप 'कंम्पीटिशन मास्टर' 'कैरियर डाइजेस्ट' पढ़ते हैं या नहीं।'

'जरूर इसलिये तो रोज लाइब्रेरी का चक्कर लगाता हूं।'

'अरे बाप! लाइब्रेरी जाकर पढ़ते हैं। इतने समय में तो आप और भी कितनी चीजें पढ़ सकते हैं। अपने ही घर क्यों नहीं मंगा लेते।' बोलते बोलते वह रुक गई थी जैसे उसे मालूम हो गया हो कि मेरी

इतनी औकात नहीं कि घर ही पत्र-पत्रिकायें मंगवा सकूं।'

वह बोली थी 'वैसे आप तो नाराज हो जायेंगे। लेकिन मुझे एक कसक है। आप इसे मत ठुकराइये। आपको कम्पीटिशन सेक्योर करने के लिये जिन पत्र-पत्रिकाओं एवं किताबों की जरूरत हो खुद मंगा लीजिये, खरीद लीजिये।' उसने मेरी ओर रुपये बढ़ा दिया और बोली, 'मुझे बहुत खुशी होगी अगर आप मुझे इतना अधिकार देंगी। आप मुझे अपना समझेंगी। भविष्य में भी बेहिचक अपनी दिक्कतें मुझे बताती रहेंगी। एक तो उस समय मुझे पैसों की जरूरत भी थी, दूसरा उसकी बोली में अपनापन भी कुछ ऐसा ही था कि मैं नकार नहीं सका। लेकिन आप किस तरह आगे बढ़ गई? क्या वह भी आपको पढ़ाता था?'

'नहीं—चाय तो हमारे घर से ही उसे मिल जाती थी। लेकिन खाना उसे बाहर ही खाना पड़ता था। मम्मी को यही बात अखरती थी। सुबह शाम चाय मुफ्त पिलाने से फायदा ही क्या? खाना भी दोनों शाम खिला दो। इससे वह पैसे भी मजे से दे देगा और बेचारे की परेशानी भी दूर हो जायेगी। हमारा कृतज्ञ भी बना रहेगा।'

पापा को यह बात पसन्द आ गई और उसे भी यह प्रस्ताव भा गया। फिर पापा और उसको साथ-साथ खाना परोसती, खिलाती। दोनों साथ-साथ दफ्तर आते जाते जैसे कि बाप बेटे हों। रात को देर तक दोनों बातें करते रहते—मैं अपने कमरे में पढ़ती रहती थी। कभी-कभी बात करते-करते वह मेरे कमरे में सरक आता था और जो किताब मेज पर पड़ी रहती उसे उठाकर किसी भी विषयपर अपना लेक्चर देने लगता था। उन दिनों मैं बहुत शर्माती थी। नजर उठाकर उसकी ओर देख भी नहीं पाता था। मम्मी भी कहती थी, पापा भी कहते रहते थे—'बेटी जो चीज समझ में न आये, कोई दिक्कत हो तो 'अंकलजी' से पूछ लिया कर।'

मैं बहुत झेंपती थी—इसलिये कुछ पूछती नहीं थी। वह लड़की भी आपसे कुछ पूछने में झेपती होगी?'

'नहीं जी वह बहुत ही बोल्ड लड़की थी। पढ़ने-लिखने से ज्यादा वह इधर उधर की बातें ही बनाती रहती थी—तुम मुझे बहुत अच्छे लगते

हो, मैं तुम्हें बहुत चाहती हूं, मुझे तुम्हारी बहुत आवश्यकता है। इस परिवार से इस परिवेश से मैं ऊब गयी हूं और इस परिवार को छोड़कर दूसरे परिवार में जाऊंगी तो उसका परिवेश भी तो ऐसा ही होगा। मुझे लगता है इस परिवेश में मैं घुट घुट कर मर जाऊंगी। मैं किसी बौद्धिक सांस्कृतिक परिवेश में रहना चाहती हूं, जीना चाहती हूं।'

एक दिन वह साफ शब्दों में बोल गई थी, 'दो तीन साल में तुम अच्छी तरह सेट्ल कर जाओगे। तब तक मैं भी बी. ए. कर लूंगी। तब तक किसी न किसी बहाने मैं घरवालों के प्रस्ताव को ठुकराती रहूंगी, टरकाती रहूंगी—मुझमें इतनी हिम्मत है। मगर तुम अपना लोगे न?' और उसने मेरी ओर हाथ बढ़ाकर मेरी हथेली को दबा दिया था। यह उसका पहला स्पर्श था। आपका पहला स्पर्श कैसे हुआ?'

'ऐसा स्पर्श तो हमारा दिन में कई बार हो जाता था। जब सुबह शेव के लिये गरम पानी से लेकर रात की चाय का प्याला उसके हाथ में थमाना पड़ता था तो एक दूसरे की हथेली छू लेना लाजिमी बात थी। मगर जब स्पर्श के साथ कोई भावना नहीं हो तो वह महत्वहीन होता है। पापा भी रिटायर होने वाले थे। कमर तो पहले ही झुक चुकी थी। तिस पर मेरी शादी की चिन्ता भी खाये जा रही थी। एक दिन मैंने मम्मी और पापा को आपस में बतियाते सुन लिया। पापा कह रहे थे, 'लड़का देखती हो, कितना सीधा सादा एवं संयत स्वभाव का है, उस पर मेधावी भी है। कैरियर के शुरू में ही 'गजेटेड ऑफिसर' हो गया है। उसमें लगन है धीरे-धीरे तरक्की कर न जाने कहां तक पहुंच जायेगा। जोड़ी भी अच्छी रहेगी। तुम्हारी क्या राय है?' 'लेकिन लड़के की खुद इच्छा हो तब तो।'

'मैं तो कहता हूं—थोड़ी सी छूट देकर देखा जाय कुछ ही दिनों में तो पता लग जायेगा। अगर उसकी भी रुचि हुई तो वह जरूर झुकेगा।'

मैं तो सब कुछ सुन चुकी थी। उसे कार्यान्वित करना मेरा ही काम था। उसी में मम्मी पापा की भलाई भी थी और मेरा भविष्य भी। तब से अकारण ही मैं उसे छेड़ देती, व्यर्थ की बातों में उलझायी रखती, पढ़ाई के प्रति अपनी निष्ठा प्रगट करने के लिये हमेशा कुछ

न कुछ पूछती रहती। सुबह झाड़ू लेकर खुद ही उसके कमरे की सफाई करने पहुंच जाती थी। पापा के कच्छा बनियान के साथ ही उसका भी कच्छा बनियान शाम होते ही धूप से उतार कर तह कर अन्दर रख देती थी। उसका कच्छा बनियान छूने में मुझे विचित्र-सी अनुभूति होती थी। रोम-रोम रोमांचित हो जाता था। फिर भी इससे ज्यादा कुछ नहीं हुआ। हां एकान्त मिल जाने पर हम एक-दूसरे को घूरते रहते थे। एक-दूसरे की आंखों में हम अपनी परछाई बनाते रहते थे। इसके आगे कुछ नहीं। लेकिन आप लोग क्या सब करते थे?'

'ऐंजी यही मत पूछिये क्या नहीं करते थे। पहले ही बता चुका हूं, वह बहुत ही भावुक किस्म की लड़की थी। जल्द ही एक दूसरे की हथेली से बढ़कर हमारी अंगुलियां एक-दूसरे की नंगी बाहें पीठ छाती और कमर के इर्द गिर्द सरकने लगी थीं। एक बात तो आपको बताना ही भूल गया। मैं उसे रात को पढ़ाने जाया करता था। आठ बजे से नौ बजे। वह जिस कमरे में पढ़ने आती थी वह बाहर की ओर खुलता था। अन्दर आंगन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। उस कमरे में आने के लिये उसे आंगन का पिछला दरवाजा खोल गली से आना पड़ता था। यों सामने वाले दरवाजे से भी आ सकती थी। सामने वाले दरवाजे पर उसकी दुकान थी वहां भीड़ लगी रहती थी। शीघ्र ही हम बहुत आगे बढ़ गये थे। जाने वक्त वह किवाड़ की ओट में खड़ी हो जाती थी, मैं उससे लिपट जाता था, वह भी बिंध जाती थी, चूमने लगती थी। एक-दूसरे से विदाई हम यों ही लेते थे। लेकिन वह भावुक भी गजब की थी। होली की बात है। होली के एक रोज पहले पढ़ाने गया तो कहने लगी, 'कल तो मेरे साथ होली खेलने नहीं आओगे। आज ही खेल लो न।' और उसने सुगंधित अबीर गुलाल से भरा लिफाफा मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं तो हैरत में पड़ गया उसकी हिम्मत पर मैंने उसे थोड़ा-सा अबीर उसके कपाल पर लगा दिया, वह बोली 'बस! संतोष हो गया?' मेरी ओर अजीब ही नजरों से निहारने लगी। तब मैं उसके गालों पर भी अबीर मल दिया। लेकिन इससे भी उसे संतुष्टि नहीं हुई। बोली 'यहां' तक तो कोई भी अमीर गुलाल लगा देता है—राह चलता

कोई गैर भी। तुम तो मेरे अपने हो, मेरे सर्वांग पर तुम्हारा और सिर्फ तुम्हारा अधिकार है।'

उसका मंतव्य स्पष्ट था। तब मैंने उसके पूरे शरीर पर मतलब आप समझ गई होंगी...सुगंधित अबीर गुलाल मलता रहा था, रगड़ता रहा था...। लड़की मुस्कुराने लगी—'तब तो आप लोग अच्छी पढ़ाई कर लेते थे। हम लोगों ने तो ऐसा कभी कुछ नहीं किया। वह यदाकदा सिनेमा की टिकटें ले आया करता था। पहले तो मम्मी पापा भी हमारे साथ चले जाते थे। बाद में वे कोई न कोई बहाना बना देते थे जैसे हमारी उमर अब सिनेमा देखने की है? आजकल की फिल्में तो हमें अच्छी ही नहीं लगती। कोई धार्मिक फिल्म हो तो चलें भी।' शायद अपनी तरफ से वे हमें छूट देना चाहते थे। हम साथ-साथ सिनेमा देखते, रेस्तरां में खाना खाते। मगर उसने ऐसी कोई हरकत नहीं की। शायद वह मुझ पर भी अपनी अफसरी का दबदबा कायम रखना चाहता था, इसलिये गिरना या झुकना नहीं चाहता था। मगर उस रोज तो गजब ही कर दिया उसने। ओढ़ी हुई सज्जनता का चादर ही उतार फेंका। मम्मी पापा सुबह ही एक रिश्तेदार की मृत्यु के अन्तिम संस्कार में भाग लेने के लिये चले गये थे। शाम से पहले आने वाले नहीं थे। हम दोनों घर में अकेले रह गये थे। उस दिन वह बहुत ही खिल गया था। जब तक मैं रसोई करती रही थी कभी मेरी बायीं ओर तो कभी दायीं ओर तो कभी पीछे आकर खड़ा हो जाता था। कभी चोटी पकड़कर झुला देता तो कभी पीठ थपथपा देता, कभी कलाई पकड़कर मरोड़ देता तो कभी कमर में चिहुंटी काट लेता। मैं आपत्ति ही क्यों उठाती? मुझे भी तो अच्छा लग ही रहा था। मैं भी तो इसके लिये लालायित थी ही। इसलिये तो इतना नाटक खेल रही थी। खाना खाकर जब वह दफ्तर जाने लगा तो उसने मेरी हथेली को जोर से दबा दिया—शर्म के मारे मेरी गरदन झुक गई। रोमाण्टिक स्टाइल में मुस्कुराते हुए उसने मेरा चेहरा ऊपर की ओर उठा दिया, मैं लाज से इतनी गड़ गई कि पल भर भी वहां नहीं ठहर सकी, कमरे की ओर भाग गई और वह 'पगली कहीं के' कहता हुआ दफ्तर की ओर हो लिया।

तब मैं घर में अकेली रह गई थी। गर्मी का मौसम था। ब जोरो की धूप थी, लू चल रहा था। कमरे का जंगला दरवाजा ः कर पर्दा फैलाकर पंखा खोलकर पलंग पर लेटी लेटी किताब पढ़ने ल दरवाजा किसी ने खटखटाया—चौंक गई। उस समय किसी का अ अप्रत्याशित ही था। कई बार पूछ बैठी 'कौन?' बाहर से कोई आव नहीं आई। केवल खटखट की आवाज आती रही। दरवाजा खोली देखा वही खड़ा था। पसीने से बुरी तरह तर बितर। शायद धूप चलने के कारण चेहरा भी फीका पड़ गया था। किवाड़ खुलते ही ः सर पर हाथ रखे पलंग पर पसर गया और बोला 'सरदर्द कर रहा इसलिये छुट्टी लेकर चला आया।' उसकी सांसे जोर से चलने ल थी, दिल धड़क रहा था। मैं तो घबरा सी गई। पूछ बैठी 'चाय बनाऊ सेरिडोन ले लीजिये।' 'सेरिडोन की कोई जरूरत नहीं है' उसके चे का रंग और भी उतर गया था। आंखें अजीब सी हो रही थी। मैं ड गई—कहीं 'लू' तो नहीं लग गया। मैंने पूछा 'डॉक्टर को बुलाऊं?' व हांफते हांफते बोला 'नहीं नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। थोड़ी देर सुस्त लेने से सब कुछ ठीक ठाक हो जायेगा।'

फिर भी मैं आश्वस्त नहीं हुई। स्टूल लेकर पलंग से सटे उसके सिरहाने के पास ही बैठ गई। अनजाने ही मेरा हाथ उसके सर प चला गया। सिर तवे की तरह जल रहा था, तप रहा था। उसने मे हाथ कों जोर से दबा दिया और बोला 'इसी तरह सहलाते रहो, बहुत राहत मिलती है।' मैं सहलाती रही। अकस्मात ही वह मेरे हाथों को अपने होठों से सटा लिया और सिरहाने से थोड़ा ऊपर उठकर मेरे मुंह पर झुक सा गया और फिर ओठों पर गालों पर गीले चुम्बनों की बौछार करने लगा जैसे कि बरसात बहुत दिन की थमी हो, आज अचानक बगैर गरज के बरस पड़ी हो। उस पर जैसे नशा चढ़ गया हो। धीरे-धीरे उसकी अंगुलियां कहीं और भी सरकने लगी थी उन्माद पैदा करने लगी थीं, जोरो से उसने मुझे अपनी बाहुपाश में समेट लिया—मैं इस स्थिति के लिये किसी भी प्रकार से तैयार नहीं थी। मैं 'ना ना' करती रही उसकी गिरफ्त से भागने की हर संभव तरीके से छटपटाती रही—वह

बहुत आगे बढ़ता जा रहा था। हारकर मैंने उसकी बाहों पर गालों पर दांत गड़ा दिया...फिर भी उसकी गिरफ्त ढीली नहीं हुई। हार कर थक कर मैं निढाल सी लेट गई और फिर...

कुछ दिनों तक तो मैं नर्वस सी बनी रही। लेकिन फिर ठीक ठाक हो गई। 'जब मन से एक दूसरे के हो ही गये हैं तो तन से भी एकाकार होने में परहेज कैसा? शादी के बाद भी तो यह सब होना ही था। क्या फर्क पड़ता है अगर शादी से पहले भी एकाध बार हो जाये तो' स्वयं को आश्वासन देने के लिये ये तर्क बार बार मन में उमड़ते घुमड़ते रहे थे। मगर उसके सर पर तो भूत सा सवार हो गया। बीस तीस मिनट का भी एकान्त मिल जाता तो वह किसी न किसी तरह दुहरा ही लेता था। मैं भी ज्यादा प्रतिरोध नहीं कर पाती थी। क्या आप भी इस स्थिति को झेल चुके हैं, भोग चुके हैं?

'झेला जरूर मगर भोग नहीं पाया। वैसे बादल तो दिन से ही आसमान पर छाया था। कभी कभी बिजली भी कड़क उठती थी। सांय सांय करती आंधी भी आ गई थी। आंधी के कारण हमने दरवाजा बन्द कर दिया था। फिर बत्ती गुम हो गई। एकदम अंधेरा सा छा गया—मूसलाधार बारिश होने लगी। हम एक दूसरे से लिपट गये थे। बाहर की आंधी लोगों की छतें उड़ा रही थीं, बारिश दीवारों को गीला कर रही थी ढाह रही थी और अन्दर हमारे मन की बारिश हमारे तन को गीला करने लगी थी—भावना की आंधी तन की दीवारों को ढाहने लगी थी। हमें इतना भी होश नहीं रह गया कि हम कहां है? उसे लेने के लिये उसका भाई आ गया था। बराबर दरवाजा खटखटा रहा था लेकिन हमें होश हो तब तो...। हारकर उसने दरवाजा तोड़ दिया। दरवाजा खुलते ही मुझपर जैसे बिजली गिर पड़ी हो। वह तो तेजी से कमरे से बाहर निकल भागी। मुझ पर क्या बीती—मत पूछिये। लात मुक्का जो लगा सो लगा ही। आदेश मिला कि रातों रात मैं अपना बोरिया बिस्तर लेकर यह शहर छोड़ दूं, फिर कभी इस शहर में पांव नहीं रखूं। कहीं भी इसकी चर्चा नहीं करूं। अगर जरा भी भनक उन्हें मिल गई तो वे मुझे जिन्दा जी दफना देंगे। मैं करता भी क्या। ट्यूशन पढ़ाता था। किराये के कमरे

में रहता था। बगैर किसी सगा सम्बन्धी के कॉलेज में पढ़ता था। ग
जगह तो वे मुझे चरित्रहीन गुण्डा आवारा घोषित कर सकते थे। अ
पढ़ाई लिखाई जीवन के सपने को अधूरा ही छोड़कर रातों रात
शहर में आ गया। आशा जरूर थी कि यहां भी मुझे ट्यूशन मिल
जायेगा और महीने दो महीने में अपनी पढ़ाई सुचारु ढंग से करने
कामयाब हो जाऊंगा। लेकिन यह शहर तो इतन खूंखार निकला
मत पूछिये। यहां के लोग इतने निर्मम साबित हुए! यहां तो हर व
एक दूसरे की स्थिति से फायदा उठाता है, कोई किसी से हमदर्दी
रखता, कोई किसी से मतलब नहीं रखता। यहां जीने की परिस्थि
भी इतनी कठोर निकली। ओफ! यहां कोई जान पहचान नहीं, र
सम्बन्धी नहीं, लगाकि यहां पढ़ना तो दूर रहा, उन्नति करना तो
रहा, जीना भी मुश्किल है। मगर लौटकर जाता भी कहां? दो ब
तक होटल में कप प्लेट धोते-धोते किसी तरह अपने को जिन्दा रख
आदमी सबसे पहले अपनी सांस देखता है फिर अपना मस्तिष्क।
साल तो इस सांस को स्थायित्व प्रदान करने में लग गये। थोड़ा-
होश हुआ। मगर तब तक तो तन-मन टूट चुका था, थक चुका थ
मन के अन्दर भावना नाम की कोई चीज ही जैसे नहीं रह गई ह
धक्का खाते खाते ठोकरें सहते-सहते एक मामूली क्लर्क की नौकरी मि
गई। लेकिन लगता है मर गया हूं जिन्दा दफना दिया गया हूं—'
जिन्दगी थी रोशन आज हो गई है स्याही।' एक दो बार उस श
से भी हो आया हूं। रात के अंधेरे में उसके घर के सामने से भी गुज
हूं—छत से, खिड़की से कहीं से वह दीख जाये इसी आस में—लेवि
वह दिखाई नहीं दी। पता नहीं वह भी जहर खाकर कहीं मर तो न
गई या किसी सेठ की बहू बन गई होगी और उसी के आंगन में पाप
बेल रही होगी। लेकिन आप एक दूसरे से कैसे जुदा हो गये?'

'मेरा भी विश्वास मुझसे इसी तरह छल कर गया। एक रोज मैं
देखा मम्मी मेरी पेटीकोट को बड़े गौर से देख रही थी। मैंने गौर ह
नहीं किया था। अगर मेरी नजर पर चढ़ जाती तो मैं उसे इस तर
धूप में डालती ही नहीं। मां को शक तो उसी रोज हो गया था। लेकि

उसके बाद ही मुझे बराबर जी मिचलाने लगता था 'कै' आने लगता था। मम्मी का शक तो पक्का हो ही गया। उसने मेरा पेट टटोलकर देखा और दंग रह गई। कुछ बोली नहीं—बोलती भी क्या? छूट तो उन्होंने जान बूझकर दे दी थी। तब से पापा उसके पीछे पड़ गये थे। उसे हर तरीके से मनाया, हर तरक का प्रलोभन दिया। लेकिन वह तो पता नहीं किस चीज का वना हुआ था। अपनी बात पर अड़ा रह गया 'यह मेरा व्यक्तिगत मामला है। इस पर मैं किसी भी दवाव में नहीं आ सकता न किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह में फंस सकता हूं।' वह मकान छोड़कर जाने लगा था तो मुझसे नहीं रहा गया। मम्मी पापा के सामने ही मैं उसके पांव पर गिर पड़ी, 'क्यों तुमने मुझे इस तरह वर्बाद कर दिया, तुमने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा। पाजी कमीने कहीं के...मगर वह तो अटल था 'बच्ची मत बनो, तुम जवान हो जवान। पति पत्नी का सम्बन्ध केवल सेक्स का सम्वन्ध नहीं होता। बहुत सारी बातें होती हैं—देखने के लिये समझने के लिये। हो सकता है तुम्हारी मजबूरी से पसीजकर मैं तुम्हें अपना लूं, स्वीकार कर लूं। लेकिन इससे न तो तुम्हारी जिंदगी में खुशहाली आ सकती है और न मेरी जिंदगी में। इससे हमारी जिंदगी और भी नारकीय हो जायेगी। बेहतर है हम एक दूसरे से सदा के लिये दूर हो जायें। तुम्हें इतनी परेशानी जिस बात से हो रही है उसके लिये भी आजकल दवाओं और नुस्खों की कमी नहीं है। बेहतर है तुम उन्हें ही आजमाओ।' वह निर्मम होकर चला गया था। मम्मी पापा बहुत उदास हो गये थे। उन्हें डर समा गया था—मेरे भविष्य का। इससे भी ज्यादा सामाजिक प्रतिष्ठा का। तभी उन्हें एक तरकीब सूझी। मेरे मौसा और मौसी दूर एक गांव में रहते थे। तार देकर उन्हें बुलाया गया। मौसी ने तो पहले मुझे बहुत भला बुरा कहा। फिर मेरे माथे पर झूठमूठ का सिन्दूर लगा दिया ताकि गांव के लोग मुझे कंवारी नहीं समझ सके। पढ़ाई लिखाई छोड़कर मौसी के साथ ही मैं गांव चली गई। वहीं प्रसव हुआ। संयोग की बात थी कि पैदा होते ही वह मर गया। मैं उसे देख भी न पाई। अच्छा ही हुआ—न देख सकी। डेढ़ दो साल इसी तरह बीत गये। तब तक सब कुछ उजड़ चुका था। कुछ करने की हिम्मत

नहीं रह गई थी। उसके कुछ ही दिन बाद पापा स्वर्ग सिधार ग मैं बिलकुल अनाथ सी हो गई। मम्मी भी भैया के पास चली ग . । मुझे 'टाइपिस्ट' की मामूली नौकरी मिल गई। यही नौकरी जी का यथार्थ है, सपने का आइना है। जीवन के प्रति कोई लगाव नहीं पैदा होता। मगर मौत भी तो अपने वश की बात नहीं।' लड़ ने कहा—'हम तो अपने अपने महबूब के मकबरे हैं। क्या ये मक फिर जीवन्त नहीं हो सकते। हम एक दूसरे के नजदीक आकर एक-दू की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकते?'

लड़की ने उत्तर दिया, 'नहीं, उसकी क्षतिपूर्ति तो अब हो ही न सकती। संभव ही नहीं है। हां हम एक दूसरे को बहला सकते हैं, ए दूसरे की जिंदगी को धोखे में रख सकते हैं। लेकिन उसकी जरूरत क्या है? मैं अपने को बहलाना नहीं चाहती।' यह कहकर लड़की घड़ी देखा। शायद उसकी अंतिम बस छूटने का समय नजदीक आ ग था। वह उठकर खड़ी हो गई। तभी सड़क पर लाल बत्ती हो गई। सा ट्रैफिक रुक गई। लड़का भी उठकर खड़ा हो गया और उसके पीछे-पी चलने लगा। उसकी इच्छा थी कि लड़की को बस स्टाप तक छोड़ आ और बस में बिठाकर हाथ हिलाहिलाकर 'सी ऑफ' कर आये। लेकि लड़की शायद नहीं चाहती थी। लाल बत्ती पार करते ही लड़की ने पू 'आपकी बस तो मद्रास होटल से मिलेगी न?'

'हां' लड़के ने उत्तर दिया और समझ लिया कि लड़की को इस कोई रुचि नहीं है कि वह उसे 'सी ऑफ' करने जाये। 'रैम्बल' के पा आकर वह मद्रास होटल की ओर मुड़ गया और लड़की रीगल की ओ मुड़ गई। कुछ दिन आगे आने पर लड़का खड़ा हो गया। पीछे मुड़क देखने लगा। देखा लड़की भी कुछ दूर चलकर खड़ी हो गई थी। पी मुड़कर देख रही थी।

लुकाछिपी

जब से पापा तबादला होकर यहां आये हैं, एक खुशहाल घर की रौनक ही मिट गई है, भरे पूरे परिवार की संजीदगी ही समाप्त हो गई है।

यों पापा व्यस्त तो पहले भी रहा करते थे, फिर भी हमें बहुत प्यार करते थे, यदा कदा में घुमाने फिराने ले जाया करते थे, हमें छेड़-छाड़कर बड़े मनोयोग से कहानियां सुनाया करते थे, हम जिद पकड़ लेते तो कैरम भी हमारे हाथ बैठकर खेल लेते या हमारे हाथ में बल्ला पकड़ाकर खुद गेंदबाजी करना शुरू कर देते—अगर 'विकेट' गिर भी जाती तो भी चिल्ला उठते—शाबाश सोबर्स! मम्मी के साथ तो घूमने फिरने बातें करने में पापा अघाते ही नहीं थे। हमें घर में अकेला छोड़कर यदा कदा वे शहर सिनेमा देखने चला जाया करते थे, रात रातभर मम्मी के साथ बैठकर ताश खेलते रहते थे, बातें करते रहते थे।

लेकिन जब से यहां आये हैं, पापा को इतना भी समय नहीं मिलता कि हमें जीभरकर प्यार कर सकें। हां कभी कभी सामने नजर पर पड़ जाते हैं तो पापा गालों को सहलाकर चूम लेते हैं—पापा और प्यार करेंगे हम तरस जाते हैं और पापा अपने काम में डूब जाते हैं। और तो और अब मम्मी के साथ भी पापा की कभी बात नहीं होती। यहां तक कि पापा मोटी-मोटी किताबें ले आते हैं, ड्राइंगों का पुलिन्दा ले आते हैं और रातभर जाग-जागकर उन्हीं में खोये रहते हैं। मम्मी पिंकी को सीने से चिपकाकर हमारे साथ ही सो जाया करती है।

जिस फैक्टरी में पापा इंजीनियर है उसकी एक नयी यूनिट इस शहर में लग रही है। अपनी तकनीकी सूझबूझ एवं प्रतिभा का परिचय

देकर उन्होंने 'डिफ्यूजन सिस्टम' का 'ले आउट' ही बदल दिया जि उत्पादक क्षमता बढ़ गई थी, बिजली की खपत कम हो गई, स्क्रैप प्रतिशत भी न्यूनतम हो गया। उनकी इसी मौलिक प्रतिभा से प्रभा होकर इस नयी यूनिट की स्थापना पापा की देखरेख में हो रही पापा कहते हें वे इस नयी यूनिट की स्थापना में पूरे 'कंट्रोल पै को बदल देना चाहते हैं। अगर अपनी तरकीब में वे सफल हो तो तकनीकी जगत में उनकी प्रतिभा का तहलका मच जायेगा। इस नयी तरकीब के पीछे पड़े हैं। कहते हैं पग पग पर उनकी निग की जरूरत है। अगर कोई भी लाइन इधर से उधर हो गई तो उ सारी आशा पर पानी फिर जायेगा, उनकी सफलता संदिग्ध हो जाये पापा को पूरा विश्वास है कि अगर वे अपने उद्देश्य में कामयाब गये तो उन्हें इस नयी यूनिट का सर्वेसर्वा बना दिया जायेगा।

पापा तो बदल ही गये हैं, मम्मी भी बदली बदली नजर अ है। पहले मम्मी बड़ी मीठी और मृदुस्वभाव की थी, हमसे हमेशा प से ही बातें करती थी। लेकिन अब चिढ़-चिढ़ी-सी हो गयी है। बात-ब में हमें डांट देती है। सदा हंसती मुस्कुराती खुश सी रहने वाली म अब इस कदर गुम सुम खोयी खोयी क्यों रहने लगी है। यों मम्मी पढ़ने लिखने का शौक तो शुरू से ही रहा है, घर में तरह-तरह पत्रिकायें पहले भी आती थीं—मगर अब उनकी संख्या और ज्यादा गई है। हमारी भी उपेक्षा कर मम्मी इन्हीं पत्रिकाओं में खोयी रह हैं। इन्हीं से अपना मन बहलाने की कोशिश करती रहती हैं। यदाक कुछ लिख भी बैठती है। एक दिन मम्मी ने पापा से कह भी दि था 'इससे तो अच्छे हम उसी शहर में थे। व्यस्तता के बावजूद तुम्ह पास हमारे लिये भी तो समय रहता था। लेकिन यहां तो लगता तुम हम लोगों के साथ रहकर भी हमें भूल ही गये हो।'

'तुम भी ऐसी बातें करती हों?' पापा ने कहा और अपने स्ट रूम का दरवाजा बन्द कर दिया।

मम्मी का चेहरा रूंआसा सा हो गया।

मम्मी भी तो ठीक ही कहती है। इससे अच्छे तो हम वहीं थे

इस शहर में पापा के तबादले का समाचार सुनकर हम कितने खुश थे। नया शहर होगा नयी सड़कें होंगी, नयी इमारतें होंगी सब कुछ नया होगा। वहां चिड़ियाघर देखेंगे, लाल किले में घूमेंगे, कुतुबमीनार पर चढ़ेंगे, बच्चों के रेल में सफर करेंगे, डॉल्स म्यूजियम में दुनियाभर के गुड़ियों को देखेंगे। मगर हमारी कल्पना की रंगीन इमारत ढह गई है। पापा की अति व्यस्तता, मम्मी के लिये भी यह शहर नया तो हमें कौन घुमाने ले जायेगा? लेकिन एक रोज पिंकी रोने लगी, 'मम्मी मुझे गुड़ियों का अजायब घर दिखा दो।' मैं भी जिद्द पकड़ बैठा, 'मैं भी सफेद हिरन सफेद बाघ देखूंगा ही।' मम्मी हमें फुसलाती रह गई। किंतु मम्मी की एक न चली। हारकर मम्मी ने वरुण अंकल को फोन किया। अंकल आये, हमें घुमाने ले गये। वरुण अंकल बहुत अच्छे लगे। हमें आइसक्रीम पाप कार्न खरीद खरीदकर खिलाते रहे, गुड़ियों के बारे में, जानवरों के बारे में तरह-तरह की बातें बताते रहे। अंकल मस्त नजर आये, मम्मी भी खुश नजर आई। बीच बीच में अंकल खिलखिलाकर हंस उठते, मम्मी भी मुस्कुरा बैठती।

वरुण अंकल यदा कदा हमारे घर आते जाते रहते हैं। हमें मालूम है वे मम्मी के दोस्त हैं। दोनों साथ ही साथ कॉलेज में पढ़ते थे। वरुण अंकल कहानियां कवितायें लिखते थे, साहित्यिक गोष्ठी के अध्यक्ष थे। मम्मी को कहानियों कविताओं का शौक था, लिखने पढ़ने में रुचि थी, इसलिये मम्मी को उनसे दोस्ती थी। दोनों एक-दूसरे को प्यार भी करते थे। लेकिन जब शादी की बात आयी तो मम्मी के न चाहते हुए भी नानाजी अड़ गये—'लेखक कलाकार जैसे फक्कड़ आदमी से मैं अपनी बेटी की शादी हरगिज नहीं कर सकता।' मम्मी चुप रह गई। मुंह खोलकर बोलती भी कैसे? पापा से शादी हो गई। पापा से मम्मी को पर्याप्त प्यार मिला। जीवन के उपयोग की सभी चीजें सुख समृद्धि के सभी साधन बहुत कम समय में ही जुटाकर पापा ने मम्मी के पास रख दिया है। मम्मी को किसी बात की कोई तकलीफ नहीं है। अब वरुण अंकल से अलग हो जाने की कोई कचोट नहीं रह गई है। साहित्य से प्रीति तो अभी भी है। इसलिये तो घर में पत्र-पत्रिकाओं की भरमार लगी

रहती है। मम्मी बड़े चाव से पत्रिकायें पढ़ा करती हैं, वरुण अंकल
भी कहानियां छपती हैं। मम्मी पढ़ती हैं, उन्हें अच्छी भी लगती हैं। व
अंकल का उन्हें पता भी मालूम है। कई बार इच्छा हुई—प्रशंसा
लिखना ही चाहिये। मगर मम्मी लिखती नहीं है। 'क्या फायदा है पु
यादों का दिया जलाकर इस सुखमय सौन्दर्यमय दाम्पत्यजीवन की झ
में आग लगा देने से—वह प्रशंसा पत्र लिखेगी वरुण भी कुछ न
उत्तर देगा ही—संभव है उनको अच्छा न लगे।' लेकिन यहां आक
जाने क्यों मम्मी ने उन्हें प्रशंसा पत्र लिख ही दिया और यह भी
पापा का तबादला इसी शहर में हो गया है।

एक दिन वरुण अंकल आ धमके। पिंकी के लिये गुड़िया ल
मेरे लिये डाक टिकटों का एलबम। मम्मी को अपनी प्रकाशित पुस
सप्रेम भेंट किया, पापा के लिये एक गुलदस्ता लाये। उस दिन म
बहुत खुश थी। विशेष आग्रह कर मम्मी ने उन्हें लंच के लिये र
लिया। हमने साथ-साथ खाना खाया। वरुण अंकल बड़े मजेदार निक
बीच-बीच में कोई चुटकुला छोड़ देते, पापा खिलखिला उठते, मम्मी मुस्
उठती और न समझते हुए भी हम हंसने लगते। तब से पापा की उपस्थि
अनुपस्थिति में वरुण अंकल यदा कदा हमारे यहां आने लगे हैं।

पापा सुबह ही फैक्टरी भाग जाते हैं। हम स्कूल चले जाते ह
मम्मी घर में अकेली रह जाती है। पिछले तीन दिनों से हमारा स्कू
बन्द है। परसों भी वरुण अंकल आये थे। हमारे लिये ढेर सारी टाफि
लाये थे। मम्मी ने बहुत आवभगत किया था। देर तक ड्राइंग रूम
बैठे वे कभी हमसे तो कभी मम्मी से बतियाते रहे थे। हमें उनकी बात
से बड़ा मजा आता। वे जब तक थे मम्मी भी बड़ी खुश थी। पि
घूमने का प्रोग्राम बना था। वरुण अंकल शाम तक हमें घुमाते रहे थे
गोल गप्पे से रसमलाई तक हमने साथ-साथ खाया था।

अंकल कल भी आये थे। अंकल के आने से पहले मम्मी ने साड़
भी बदल लिया था, चेहरे पर मेकअप भी कर लिया था। ड्राइंग रूम
में एक ही सोफे पर बैठी मम्मी बहुत घुल मिलकर बातें कर रही थी
हम उनके इर्द-गिर्द ही मंडराते रहे थे। पिंकी कूदकर मम्मी की गोद

में जा बैठी थी और शिकायत भरे शब्दों में बोली थी—'अंकल बहुत गन्दे हैं। अकेले आ जाते हैं। कभी आण्टी को भी नहीं लाते।'

वरुण अंकल हंसने लगे थे। मम्मी भी मुस्कुराने लगी थी। बोली थी, 'ऐसी बात नहीं बोलते। अंकल के पास आंटी नहीं है न?'

पिंकी तपाक से बोल पड़ी थी, 'क्यों नहीं है अंकल के पास आण्टी मम्मी?'

अंकल खिलखिला उठे थे। मम्मी खामोश हो गई थी और फुसलाने के शब्दों में बोली थी, 'जाओ खेलो, अच्छे बच्चे मम्मी को तंग नहीं किया करते।' पिंकी गोद से नीचे उतर गई थी, गुड़िया लेकर मेरे पास आ गई थी। अंकल ने कुछ कहा था। मम्मी वहां से उठ गई थी। मेरे पास आकर बोली थी 'तू आज क्रिकेट खेलने नहीं गया। जा और पिंकी को भी ले जा। लेकिन देखना पिंकी को बॉल 'वगैरह न लगे।'

न जान क्यों एलबम के पन्नों पर डाक टिकट चिपकाते हुए मैंने कह दिया था, 'आज मैं विक्रेट खेलने नहीं जाऊंगा। एलबम को ही ठीक कर लूंगा।'

मम्मी जाकर वहीं बैठ गयी थी। पिंकी भी गुड़िया लेकर मम्मी की गोद में जा बैठी थी। अंकल कुछ देर बातें करते रहे थे—फिर चले गये थे।

आज भी स्कूल बन्द है। पापा तो सुबह ही फैक्टरी चले गये हैं। मम्मी सजधज कर बन संवरकर हाथ में पर्स ली हुई निकलती है और मुझे बुलाकर कहती है—'पिंकी पर जरा ध्यान रखना। मैं अभी थोड़ी देर में मार्केट से आती हूं। अगर वरुण अंकल आ जायें तो कहना बैठने के लिये।'

मेरे दिमाग में न जाने क्यों एक खुराफात सूझ जाती है। मैं पिंकी को कहता हूं—'आज अंकल को उल्लू बनाया जाये। खूब मजा आयेगा।'

पिंकी पूछती है—'कैसे?'

मैं कहता हूं, 'अंकल आये तो मुंह बनाकर कह देना 'मम्मी पापा के साथ कहीं गई है।'

पिंकी कहती है, 'और अंकल जब इसे सत्य समझ लेंगे तो हम

खूब हंसेगे।'

ऐसा ही होता है। अंकल आते हैं। हाथ में 'एक पैकेट है। शाय मम्मी के लिये कुछ लाये हैं। जेब से टॉफी निकालकर पिंकी को दे हैं। पिंकी टॉफी लेने से इन्कार कर देती है, 'हमें आपकी टाफी नह चाहिये। आज मम्मी बहुत रोयी—पापा घुमाने ले गये हैं।'

अंकल का चेहरा उतर जाता है। वे पीछे मुड़ जाते हैं। उनके पी मुड़ते ही हम जोर से हंस पड़ते हैं। हमारी हंसी सुनकर वे और भ तेजी से चलने लगते हैं।

थोड़ी देर बाद मम्मी आती है। मम्मी के हाथ में कुछ है। आत ही पूछती है, 'क्यों अंकल नहीं आये?'

पिंकी अपनी जीत की खुशी में प्रफुल्लित होकर कहती है, 'आ थे। हमने उन्हें खूब उल्लू बनाया। कह दिया मम्मी पापा के साथ घूमन गई है।' हमने जोरों से हंस दिया और वे चले गये। बाद में हमने उन्हे बुलाया भी, लेकिन वे नहीं लौटे।'

मम्मी का चेहरा फक् से उड़ जाता है। मम्मी पलंग पर आकर लेट जाती है। मम्मी की ऐसी हालत देखकर हमें अफसोस होता है कि अंकल को उल्लू हमने क्यों बनाया। तभी पिंकी कहने लगती है, 'मम्मी की तबीयत ठीक नहीं है। हमें पापा को फोन करना चाहिये।' मैं नम्बर मिलाता हूं। पिंकी पापा से कहती है 'मम्मी की तबीयत बहुत खराब हो गई है। न जाने क्या हो गया है—कुछ बोलती नहीं पलंग पर लेटी है।'

पापा चौंक से जाते हैं। घबरा उठते हैं। कहते हैं, 'मैं अभी आया।'

थोड़ी देर बाद ही पापा आ जाते हैं। पापा को आते देख हम लुका छिपी खेलने पड़ोस में चले जाते हैं।

दूसरा झटका

शादी की सारी रस्म अदायगी मैं यंत्रवत करता रहा, न कुछ रास आया, न कुछ आभास हुआ। किन्तु सिंदूरदान के समय अंगुलियां अचानक ही ठिठक गई। उस समय दो बातें याद आने लगीं, एक पहेली जो कि जब हम बच्चे थे तो बड़े नखरे से दूसरे बच्चे से पूछकर तंग किया करते थे 'ऐसी कौन सी चीज है जो तुम्हारे पापा ने तुम्हारी मम्मी को एक बार लगा दिया और उसके बाद तुम्हारी मम्मी रोज उस चीज को स्वयं ही लगा लेती है।' बच्चे भौंचक्के से हो जाते और हम बहुत खुश होते कि प्वाइन्ट मारा। दूसरी–'यह सिंदूर की रेखा, मांग भरने का वादा तो मैंने किसी और के माथे में किया था।' तभी पुरोहित के मंत्रोच्चारण ने अंगुलियों में पुनः गति ला दी और अंगुलियां लगातार तीन बार सिंदूर की रेखा खींच गई।

सारी रस्म अदायगी के बाद मुझे कोवरा घर में ढकेल दिया गया। कमरा सुसज्जित था। पलंग पर मोटा गद्दा बिछा था। ऊपर साफ सुथरी नयी रंगीन चादर बिछी थी। तकिये के कवर पर बड़े कलात्मक एवं आकर्षक ढंग से लिखा था–प्रथम मिलन–शुभ मिलन। दीवार की रंगाई कर जगह जगह चित्रकारी कर दी गई थी। एक कोने में कोहवर लिखा गया था। वहीं घी का दिया जल रहा था। कमरे में उसी की धुंधली रोशनी झिलमिला रही थी। सुना था विवाह की रात में, प्रथम मिलन की बेला में हर कोई कवि हो जाता है, भावुक हो जाता है, कल्पनाओं की रंगीन दुनिया में खो जाता है। किन्तु उस समय मैं बिल्कुल भावुक नहीं था और न कोई सुनहरी कल्पना ही मस्तिष्क में उमड़ घुमड़ रही थी। अपितु मन हर तरह से उद्विग्न एवं नर्वस सा हो रहा था। पिछली

बातों के बाज बारी बारी से आते और मुझे झपट्टा मारकर घायल करने लगते। मैं कितनी भी कोशिश करता कि ये बाज उड़ जायें, बार-बार अपने फैले पंखों से झपट्टा न मारे, किन्तु मैं जितनी तेजी से उन्हें भगाने की कोशिश करता, वे उतनी ही तेजी से झपट्टा मारने लगते। तभी बुलबुल की तरह चुलबुल चुलबुल करती चहकती फुदकती सखियां उसे घेरे में बांध लाई। आगे बढ़कर एक सखि ने उसके कान में कुछ फुसफुसाया और फिर मेरे कान में। आशय यही था कि आज का दिन शुभ दिन है। बातचीत की शुरूआत आज ही हो जानी चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि वह सोचे कि उन्हें पहले टोकना चाहिये और आप सोचें कि उसे पहले टोकना चाहिये और इसी उलझन में सुबह हो जाये। यह भी सीख दे दी गई कि अगर वह तैयार हो जाये तो उस बात की भी शुरू आत आज ही कर दी जाये तो अत्युत्तम होगा। किवाड़ लगाकर सभी सहेलियां बाहर निकल गई। कमरे में हम अकेले रह गये। एक कोने में घूंघट काढ़ी लाल चुनरी में सिर से पैर तक छिपी, लाज से सिकुड़ी सिमटी भीगी बिल्ली सी बनी वह बैठी थी और पलंग के किनारे पर मैं बैठा था। वह जिस कोने में बैठी थी उस कोने से एक अजीब सी सुगन्धि आ रही थी। शायद वह सुगन्धि नयी नवेली दुल्हिन की ताजी देह की थी। पलंग से उठकर नहुं नहुं मैं उसके पास सरक आया था। मुझे उम्मीद थी कि मेरे पास आने का आभास पाकर वह घूंघट से ही नजर उठाकर मेरी ओर देखेगी। किन्तु वह तो अपने चेहरे को और भी नीचा कर दोनों घुटनों के बीच छिपा बैठी। मैं थोड़ी देर तक यों ही बैठा रहा। उसकी देह में थिरकन सी हुई किन्तु उसकी तरफ से कोई हरकत या हलचल नहीं हुई। तब दोनों हाथों से उसके चेहरे को ऊपर उठाकर धीरें-धीरे मैंने उसके घूंघट को सरका दिया था और टिमटिमाते दीये की झिलमिलाती रोशनी में प्रथम बार उसका मुंह देखा था। ठीक वैसा ही कोमल कमनीय आकर्षक मुख। 'नाक नक्श भी ठीक वैसा ही। उसके पतले पतले ओठों पर अंगुलियां फेरते हुए मैंने पूछा था

'तुम्हारा प्यारा मीठा मीठा नाम?'

'मिन्नी।' वह धीमे से बोली थी। आवाज मे सिहरन थी किन्तु मधुरता भी पर्याप्त थी। दूसरे ही क्षण वह फिर घूंघट काढ़कर घुटनों के बीच चेहरे को छुपा बैठी थी। बीती हुई बातों के बाज मुझे फिर झपट्टा मारने लगे थे। उसका भी तो नाम कुछ ऐसा ही था–'मीना'।

मीना मेरे एक दोस्त की बहन थी। हम दोनों दोस्त पांच साल तक साथ-साथ पढ़ते थे। दोनों में खूब घनिष्टता थी। मैं दूर गांव से वहां पढ़ने आया था और मेरे दोस्त का घर उसी शहर में था। घनिष्टता ऐसी थी कि हम तीनों एक ही साथ सिनेमा घूमने आते जाते थे। यों मीना की उमर मुझसे ज्यादा थी किन्तु वह इस तरह मुझसे जुड़ गई थी कि मेरा 'होम सिकनेस' ही दूर हो गया था। छुट्टियों के दिन, तीज त्यौहार के दिन हम विशेष रूप से मिलते। मीना बड़े प्रेम से हम दोनों को खिलाती, खुद भी खाती। थोड़ा सा भी दुख दर्द हो, रोग शोक हो, मामूली बुखार भी चढ़ जाये, वह परेशान सी हो जाती। अपना डॉक्टरी नुस्खा सेवा परहेज शुरू कर देती। यहां तक कि इंजीनियरिंग की डिग्री लेने के बाद मेरे दोस्त को आर्मी में कमीशन मिल गया था और मैं बेकार बैठा रह गया था। वह एक प्राइवेट फर्म में काम करती थी और मैंनेजिंग डायरेक्टर की विश्वसनीय निजी सचिव थी। उसी ने मैनेजिंग डायरेक्टर से मेरी पैरवी कर अपने ही फर्म में 'सेल्स इंजीनियर' के पद पर मेरी नियुक्त करवा दी थी। उसी मीना को दुखी कर आज मैं मिन्नी के पास।

मिन्नी फिर घूंघट काढ़ कर बैठ गई थी। मैं उसके घुटनों के पास ही बैठकर उसकी देह की ताजी खुशबू का जायका लेने लगा था। अचानक ही मेरे मुंह से निकल गया था 'क्या मैं इतना बदसूरत हूं कि तुम नजर उठाकर देख भी नहीं सकती?'

घूंघट के अन्दर से ही एक मधुर आवाज आई थी 'जो दिल में ही हमेशा बैठे हों, उन्हें नजर से देखने की क्या जरूरत?' और फिर ऐसी ही रुमानी बातों में सुबह हो गई थी।

दूसरी रात मिन्नी का घूंघट थोड़ा-सा खिसका था, सरका था। उसके ओठ फड़फड़ाये थे। मन का कुछ रूप परखने को मिला था। तन का

कुछ गोरा चमकता दहकता भाग भी दिखाई दिया था। मैं भी कुछ बढ़ा था। किन्तु पिछली बातों के बाज बार-बार आक्रमण कर और मैं ठिठक सा जाता। दोस्त के आर्मी में चले जाने के बा दोनों उस शहर में अकेले रह गये थे। कुछ दिनों तक हम दो दोस्त का अलगाव या अभाव काफी खटका था फिर हम अभ्य गये थे। एक दूसरे में ही दोस्त को तलाशने की कोशिश करते दूसरे से ही उस अभाव को भरने की कोशिश करते। उसके कुछ गज के फासले पर मैंने अपना मकान ले लिया था। कम्प तरफ से मुझे एक स्कूटर मिल गया था। सुबह दफ्तर के सम मेरे पास आ जाती। मैं तैयार रहता। हम स्कूटर पर बैठते। मैं बदलता और वह मेरी कमर के इर्द गिर्द अपनी बांह लपेट देती। मिनटों के भीतर ही हम साथ-साथ दफ्तर की सीढ़ियां चढ़ रहे शाम को दफ्तर से निकलने पर हम पार्क में बैठकर गप्पे मारा बाजार की सड़कों पर चहल कदमी किया करते या नहीं तो किसी गृह में जाकर बैठ जाते। हमारे इस प्रकार के मेल मिलाप पर परिवार के लोगों को कोई आपत्ति नहीं थी और न किसी प्रका शक सुबहा ही था। हम एक दूसरे से इस तरह घुल मिल गये थे हम यदा कदा निजी गोपनीय बातें भी एक दूसरे से कह दिया क

शादी के तीसरे दिन की बात है। यों बादल का गरजना बि का दमकना दोपहर से ही शुरू था। शाम ढलते ही जोरों की आयी और फिर वर्षा की बौछार। हवा सांय सांय बह रही थी वर्षा की मोटी मोटी बूंदे गिर रही थीं। 'कोबरा' घर अन्य सभी व से अलग गली में था। वह सखी के साथ सिकुड़ी सिमटी भीगी आई थी। सखी मुस्कुराती हुई बोली थी—

'टूट टाट कर टपकत खट्यौ टूट
पिय के बांहि उसिसवां सुख के लूट।'

'खाट भी टूटी हो, छप्पर भी टूटा हो, टपटप पानी गिर रहा फिर भी पिया की बांह में जो आनन्द है, उस सुख को कौन नहीं लू चाहेगा। लेकिन आपकी न तो खाट टूटी है और न छप्पर ही टूटा

तब बरसात की इस झड़ी में आप लोगों को कितना आनन्द होगा। लगता है इन्द्र भगवान ने आप ही लोगों के लिये ऐसा मौसम कर दिया है।

सखी मुस्कुराती हुई चली गयी थी किन्तु अभी मिन्नी इतनी खुल नहीं पायी थी कि पलंग तक वह खुद आ जाये। लाज से सिकुड़ी सिमटी घूंघट काढ़ी वह कोने में जाकर बैठ गई थी। वर्षा की फुहार के कारण उसकी साड़ी गीली हो गई थी। मेरे मुंह से निकल गया था 'तुम्हारी साड़ी भीग गई है। अगर रात भर इसे ही लिपटायी रहोगी तो बीमार पड़ जाओगी।'

'बुखार तो आपके पास आ ही जाने से हो जाता है।' घूंघट के अन्दर से ही आवाज आई थी।

'तब तो तुम्हें कोई दवा लेनी चाहिये।'

'डाक्टर तो आप ही हैं। दवा भी तो आप ही देंगे।'

'तुमसे ऐसा किसने कह दिया? मैं डाक्टर थोड़े हूं। इंजीनियर हूं।'

'तब तो आप सिर्फ कल पुर्जों की देखभाल करना जानते होंगे।' चेहरे को थोड़ा सा सरका कर घूंघट से ही वह बोली थी। उसकी इस अदा पर मुझे प्रोत्साहन मिला था। आगे बढ़कर मैंने तेजी से उसके चेहरे से घूंघट खींच दिया था और धीरे-धीरे साड़ी खिसकती खिसकती कमर तक आ गई थी। कमर पर लगी साड़ी की गांठ पर अंगुली पड़ते ही वह चौंक उठी थी 'यह क्या कर रहे हैं? पहले दीया तो बुझा दीजिये।' और फिर दीया भी बुझ गया था।

कुछ ऐसा ही प्रसंग तो मीना के साथ भी जुड़ा हुआ है। उस दिन सुबह से ही बड़ी तेज बारिश हो रही थी। बारिश थमने का नाम ही न ले। वह उस मौसम की पहली बरसात थी। इसलिये मौसम काफी खुशनुमा हो गया था। गौर किया आज दफ्तर में कोई ऐसा अत्यावश्यक काम भी नहीं है। मैंने सुबह ही निश्चय कर लिया था कि आज इस खुशनुमा मौसम का आनन्द लिया जाये। ठीक दफ्तर जाने के समय बारिश थोड़ी देर के लिये रुकी। बूंदा बूंदी फिर भी जारी रही। दफ्तर जाने के लिये मीना घर से निकली। बीच रास्ते में पुनः जोरो की बारिश होने लगी और मेरे कमरे तक पहुंचती पहुंचती वह पूरी तरह भीग चुकी

थी। ऊपर से नीचे तक उसके कपड़े गीले हो गये थे। उसकी देह के अंग प्रत्यंग उन गीले कपड़ों को पारदर्शी परतों से साफ साफ झांक रहे थे। उसे देखते ही मैं बोल पड़ा था 'इतनी बारिश में घर से निकलने की क्या जरूरत थी?'

'क्यों आज दफ्तर नहीं जाना?'

'इतनी बारिश में कैसे जाओगी? मैं सोच रहा था आज 'रेनीडे' मनाया जाये।'

'अच्छा तुम जैसा सोचो।' वह बोली।

'लेकिन तुम तो बिल्कुल भीग गई हो।' उसकी दहकती जिस्म पर नजर मारते हुए मैंने कहा।

'कोई बात नहीं, थोड़ी देर में स्वयं सूख जायेगा।'

'स्वयं थोड़ी देर में सूखे या न सूखे यह संदेहास्पद है। लेकिन कल तक तुम बीमार जरूर पड़ जाओगी—यह निश्चित है।' उसके कपड़ो से चू रहे पानी की ओर इशारा करते हुए मैंने कहा था 'देखो कमरे का फर्श भी गीला हो रहा है।' वह लाचार सी होकर बोली 'अब किया भी क्या जा सकता है? बीबी वाले तो तुम हो नहीं कि तुम्हारे पास साड़ी वगैरह होगी?'

'लेकिन तौलिया तो है। तौलिये से अच्छी तरह देह हाथ पोंछकर थोड़ी देर के लिये मेरा पायजामा कुरता ही पहन लो। फिर हम ताश खेलेंगे।' और तौलिया सहित कुरता पायजामा मैंने उसके हाथ में पकड़ा दिया।

'लेकिन कपड़े बदल भी लूं कैसे? तुम थोड़ी देर के लिये बाहर चले जाओ न?'

'क्यों मुझे भी भिगोने का इरादा है क्या? बाहर तो जोरों की बारिश हो रही है। कहो तो अन्दर ही आंख मूंद लेता हूं।'

'किन्तु तुम्हारा क्या भरोसा? अगर बीच में ही आंख खोल लो तो।' वह मुस्कुराती बोली।

'कहो तो नजरें फेरकर थोड़ी देर के लिये चेहरा पीछे कर लूं।'

'अच्छा बाबा। अच्छा।' वह बोली और तौलिये से देह हाथ पोंछने

लगी। मैं जंगले के पास आकर खड़ा हो गया। सड़क पर पानी का जमाव बढ़ गया था। मेढक उछल कूद कर टर्र टर्र कर रहे थे। मैं उसे ही देखने लगा। अचानक ही नजर पीछे मुड़ गई तो चेतना को जैसे करेण्ट छू गई हो। उसकी कमर में वही छोटा सा तौलिया लिपटा था। चोली, ब्लाउज निकालकर वह कुरता पहन रही थी। गर्दन से लेकर पांव तक का गोरा गोरा चमकता दहकता उत्तेजक उसके शरीर को देखकर मेरी शिराओं में खून तेजी से दौड़ने लगा था। इतने सालों से इतने नजदीक रहकर, इस तरह घुल मिल जाने पर भी मन कभी इस तरह आक्रान्त नहीं हुआ था। शरीर की सभी नसें कसमसाने लगी थीं। खून का सारा प्रवाह एक निश्चित दिशा की ओर मुड़ गया था। एक अजीब ही बेचैनी ही अनुभूति थी। हम पलंग पर आमने सामने बैठे ताश खेल रहे थे। ताश के पत्ते बांटते बांटते मैंने उसका हाथ पकड़ लिया था 'आज संयम का बांध टूट जाना चाहता है। तन मन घुल मिल जाना चाहता है।' मेरी आवाज में बेचैनी थी।

'ऊँ' वह कुछ बोल नहीं पायी थी। शायद मौसम की अनुकूलता का असर उस पर भी था। दूसरे ही क्षण जंगले के शीशे पर जिसके जरिये कमरे में रोशनी आती थी पर्दा खींच चुका था। दोपहर तक बारिश थम चुकी थी, उसकी फ्रेंच शिफन साड़ी भी सूख चुकी थी। किन्तु हमारे प्यार की बारिश थम नहीं रही थी। हमारा तन-मन सूख नहीं रहा था।

शादी की चौथी रात की बात है। मिन्नी तन मन से खुल चुकी थी। बाहर कुछ लोग बाते कर रहे थे। वह मेरी बांहों में थी। वह फुसफुसायी थी 'बिल्कुल आहिस्ते बोलिये। बाहर कोई सुन न ले।' थोड़ी देर बाद वह फिर बोली थी 'सुनते हैं शहरों में मकान की बड़ी दिक्कत है। इतनी दिक्कत कि पति पत्नी आपस में बातें भी नहीं कर सकते। मन चाहे ढंग से प्यार भी नहीं कर सकते। आपका मकान कैसा है?'

'अभी तक तो मैं अकेला था। इसलिये एक ही कमरे किराये पर ले लिया था।'

वह बीच में ही बोल उठी थी, 'अब ऐसे मकान की तलाश कीजियेगा जो कि बिल्कुल शान्त और एकान्त हो।'

मीना भी तो ऐसा ही कहती थी। उस दिन के बाद हम यदा कदा एक दूसरे की बांहों में हो लेते। बांहों में खोई एक दिन वह भी कह गई थी 'शादी के बाद हम एक नया पूर्णतया स्वतंत्र फ्लैट ले लेंगे। साथ-साथ दफ्तर आयेंगे, जायेंगे, खायेंगे, पीयेंगे, घूमेंगे, फिरेंगे। कितनी हसीन होगी वे दिन रात। कितनी खुशनुमा होगी हमारी जिंदगी।' बोलती बोलती वह भावुक हो गई थी।

उसके कुछ दिन बाद अचानक ही पिताजी का खत आ गया। 'तुम्हारी शादी मैं ठीक कर चुका हूं। तुम्हें कौन सा दिन 'सूट' करेगा। दफ्तर से छुट्टी मिल सकेगी या नहीं, फौरन लिखना।'

किसी और लड़की से शादी की बात सुनकर मुझे लगा जैसे कि मुझे किसी ऊंची इमारत से धकेल दिया गया हो। अपने जीवन के आदर्शों एवं उद्देश्यों की भूमिका बांधते हुए मैं एक लम्बा सा विरोध पत्र लिख बैठा था। लेकिन पत्र मिलते ही पिताजी खुद आ धमके थे। मैंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मुझे एक लड़की से प्रेम है। और जोरदार शब्दों में यह भी जोड़ दिया कि मैं शादी करूंगा तो उसी लड़की से।

पिताजी बड़बड़ाने लगे, 'तुम्हारे बड़े भाई ने मेरी मर्जी के खिलाफ सिर्फ इसलिये 'हेड ऑफ दि डिपार्टमेन्ट' की लड़की से शादी कर लिया ताकि उसे 'रिसर्च फेलोशीप' मिल जाये, तब हम दोनों प्राणियों पर क्या गुजरी क्या बताऊं? उसने तो हमारे सारे हौसले पर पानी फेर दिया। अब हमारा सारा मनोरथ तुम पर ही टंगा हुआ है। मैं अपनी क्या बताऊं? लेकिन जरा मां की तो सुध लो कि वह दिन भर क्या सोचती रहती है? क्या रट लगायी रहती है। बेटे, बुढ़ापे की एक जबरदस्त अभिलाषा अपनी संतान की शादी करनी भी होती है। प्रेमिका तो जिंदगी में कई आती हैं चली जाती हैं, किसी किसी की जिंदगी में पत्नी भी चार पांच आकर चली जाती है। किन्तु मां बाप जिंदगी में एक ही होते हैं।' बोलते-बोलते पिताजी की आंखें छलछला गई थी। चेहरा द्रवित हो गया था।

मैं उनकी आंखों के आसूओं को झेल नहीं सका था। बच्चों के आंसू तो कोई भी झेल लेता है किन्तु बूढ़ों के आंसू झेलना बड़े साहस का काम है। पिताजी की यही उक्ति गिड़गिड़ाते हुए मैंने मीना के सामने

रख दिया तो मीना की भी आंखे छलछला गई थीं, 'ठीक है मां बाप जिंदगी में एक ही होता है, एक ही बार मिलता है। किन्तु नारी भी पुरुष को एक चीज जिंदगी में एक ही बार दे पाती है, एक ही पुरुष को दे पाती है। हमारी स्थिति तो इस समाज में वैसी ही है जैसे कि सीलबन्द डिब्बों में बिकने वाली चीज की बाजार में। डिब्बे की सील किसी भी वजह से टूट जाये तो ग्राहक उसे संदेह की नजरों से देखने लगता है, उस डिब्बे को लेता नहीं, अगर लेता भी है तो रियायती दर पर। किन्तु हमारे तुम्हारे बीच तो सब कुछ घट चुका है। स्त्री पुरुष का सम्बन्ध केवल तन का सम्बन्ध नहीं है। अगर केवल तन का सम्बन्ध होता तो कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता। लेकिन इसके साथ मन भी जुड़ा हुआ है। जब मन का मन के साथ तादात्म्य स्थापित होता है तभी तन मन का मिलना भी सार्थक एवं आनन्दपूर्ण होता है, वरना तो मात्र खानापूर्ति है। लगता है तुम मेरी देह से तो जुड़ गये लेकिन मन के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके तभी तो तुम्हारा मन किसी और लड़की को ब्याहने के लिये तैयार हो गया है।'

'मीना तुम मुझे गलत मत समझो। मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी कि मेरे न चाहते हुए भी पिताजी ऐसी राय ले लेंगे। उनके सामने मैं बिल्कुल लाचार हो गया हूं।'

'ठीक है अगर तुम्हारा झुकाव पिताजी की ओर है तो मैं अपनी ओर झुक जाने के लिये तुम्हें लाचार नहीं करूंगी।' गाल पर बह रहे आंसूओं को पोंछती हुई उसने अपना चेहरा आंचल में छुपा लिया था।

वास्तव में मैंने मीना के साथ जुर्म किया। उसकी कल्पना की इमारत को ढाह दिया। उसकी भावना की दीवार को तोड़ दिया, उसके विश्वास के आइने को चकनाचूर कर दिया। उसकी जिंदगी को बर्बाद कर दिया। मैं मक्कार हूं, दगाबाज हूं, धोखेबाज हूं। उसने मुझे कितना चाहा। कितना प्यार किया। पहले बहन का स्नेह दिया, फिर प्रेमिका का प्यार दिया और पत्नी का दुलार दिया। उसने मुझे कितना सहारा दिया। आज जो कुछ मैं हूं उसी की बदौलत तो हूं। और मैं...

शादी के पांचवे दिन की बात है। शादी की सारी विधि चौथे दिन ही समाप्त हो गई थी। मैंने जाने का प्रस्ताव रख दिया तो सभी भौंचक्के से हो गये। होते भी क्यों नहीं? दिन भर साली सलहजों से मीठी मीठी रस भरी बातें, रात भर नयी नवेली दुल्हिन की ताजी देह की खुशबू, सब का आदर सत्कार, खाने के लिये हर प्रकार की स्वादिष्ट चीजें–इन्हें छोड़कर कौन जाना चाहेगा? किन्तु पिछली बातों के बाज बार बार अपने नुकीले पैरों से मुझे झपटने लगते। मैं व्यग्र सा हो गया था कि किसी तरह मीना से मिलकर माफी मांग लूं। उसके आंचल के साये में सर छुपाकर खूब रोऊं ताकि उसे भी आभास हो जाये कि उससे जुदा होकर मैं भी खुश नहीं हूं। इसलिये मैंने जाने का प्रस्ताव रख दिया। साली नटखट निकली। जूता लेकर भाग गई, 'देखती हूं अब आप कैसे जाते हैं?'

सास ने सलहज के मारफत कहला भेजा, 'शहर में रहने वालों को गांव में मन भी नहीं लगता। गांव में मन लगने लायक है भी क्या? मेहमानजी की इच्छा हो तो मिन्नी को लेकर कुछ दिनों के लिये शिमला, मसूरी, नैनीताल या देहरादून चले जायें।'

मैंने कहा, 'ऐसी कोई बात नहीं है। प्राइवेट नौकरी है। बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है। जा रहा हूं। लम्बी छुट्टी लेकर जल्द ही लौट आऊंगा।' तब कहीं जाकर जाने की अनुमति मिली। 'अभी न जाओ छोड के, अभी यह दिल भरा नहीं।' गुनगुनाती हुई साली जूते वापस कर गई।

फिर पिया मिलन को मिन्नी आई। घूंघट की ओट से ही बोली–'अभी तो अंधेरा ही है। अभी तो सूरज की लाली भी न छिटकी। अभी तो सूर्य की किरणें भी न फैल सकी हैं। अभी तो हरसिंगार के फूल भी नहीं खिल सके हैं। और आप अधखिला छोड़कर ही जा रहे हैं। अगर इतनी जल्दी थी तो आये ही क्यों? कली को छेड़ा ही क्यों?'

मैंने उसका घूंघट सरका दिया। दिन के उजाले में पहली बार उसके चेहरे को देखकर चूम लिया। वह बांहों में समाकर लिपट गई। और बोली 'छुट्टी लेकर जल्दी वापस आ जाईयेगा न?'

मेरी आंखों से आंसू गिर पड़े। मैं नहीं कह सकता कि ये आंसू किसके लिये? मिन्नी के लिये या मीना के लिये? मीना भी तो विदा

के समय इसी तरह लिपट जाती थी। दफ्तर के काम से टूर पर जाते समय मीना भी इसी तरह बांहों में समा जाती। मैं उसकी पीठ पर हाथ फेरता। वह कहती 'सफर में जरा सावधान रहना। खाने पीने पर ध्यान रखना। अगर किसी भी वजह से विलम्ब हो जाये तो फौरन सूचित करना।'

यहां आते ही सबसे पहले दफ्तर में फोन किया। पता चला वह त्यागपत्र दे चुकी है। सर चकराने सा लगा। उसे मेरी बात से बहुत सदमा पहुंचा। इस आघात को वह झेल नहीं सकी। तभी तो नौकरी से भी इस्तीफा दे दिया।

फुर्ती से उसके घर की ओर लपका। मां बाहर ही मिल गई। छुटते ही उलहना देने लगी, 'चुपके से शादी कर ली और बुलाया भी नहीं।' मैंने पूछा, 'मीना कहां है?'

'वह तो कश्मीर गई हुई है'—कहती हुई मां अन्दर चली गई। वापस आई तो हाथमें मिठाई की तश्तरी थी—'तुमने तो अपनी शादी का लड्डू नहीं खिलाया। लो मैं ही खिला देती हूं। मीना की भी शादी हो गई—रणधीर से। पिछली दफा आया था न तुम्हारे साथ। आर्मी में मेजर है। तुम्हारी चर्चा भी कर रहा था।'

अब गेरा मन मिन्नी के पास पहुंचने के लिये पुनः कुलबुलाने सा लगा।

उड़न तश्तरी में उड़ान

पिछले कुछ महीनों से अनीता आदित्य के प्रति स्वयं को खीझी खीझी सी महसूस कर रही थी। दफ्तर के किसी काम से उसके केबिन में चली भी जाती थी, किन्तु व्यक्तिगत काम से या यों ही जाने में हिचकिचाहट सी होती थी। पहले उसकी इच्छा हुई कि 'इन्टरकॉम' पर आदित्य से बात कर ले और फिर चपरासी के हाथ आवेदन पत्र भिजवा दे। लेकिन ऐसे मामलों में व्यक्तिगत मुलाकात ही प्रभावशाली होती है, यही सोचकर हाथ में आवेदन पत्र लेकर वह आदित्य के केबिन में घुस गई। घुसते ही वह ठिठक सी गई। सांप छुछुन्दर वाली गति हो गई। न आगे ही बढ़ते बनता था और न पीछे ही लौटते। उस समय आदित्य अपनी स्टेनो को डिक्टेशन दे रहा था। यों कहने को तो वह डिक्टेशन दे रहा था—किंतु टेबुल के नीचे आदित्य के नंगे पांव स्टेनों के नंगे पांव पर फिसल रहे थे। अन्दर आकर अगर वह 'सॉरी' ही कह बैठती या बाहर लौट जाती तो बड़ी हास्यास्पद सी हो जाती—उसकी स्थिति। स्टेनो ने जिस अंदाज में उसे 'गुड मार्निंग' कहा था, बड़ी बदतमीजी सी लगी। सारी बातों को अनदेखा कर उपेक्षा कर अनीता आगे बढ़ गई और आदित्य के सामने आवेदन रख दिया

'यों तो लड़का काफी प्रतिभावान है। बी. कॉम फर्स्ट क्लास है। कोई पैरवी नहीं लगती, इसलिये बेकार बैठा है। मेरा मौसेरा भाई है। अगर तुम्हें जंच जाये तो इन्टरव्यू के लिये बुला लेना।'

आदित्य ने आवेदन को टेबुल से उठाकर दराज में सरका दिया। अनीता बाहर निकल गई। उसके बाहर निकलते ही आदित्य और उसकी स्टेनो खिलखिलाकर हंस पड़े।

आदित्य के 'सेक्शन' में एक सहायक की जगह खाली थी। आदित्य के ऊपर ही यह जिम्मेदारी थी कि वह एक योग्य सहायक चुनकर उसका नाम ऊपर अग्रसारित कर दे। चन्द रोज पहले ही अखबार में विज्ञापन दिया जा चुका था। हजारों आवेदन पत्र आ चुके थे। आदित्य के पास इतनी फुरसत कहां कि वह सारे आवेदन पत्रों को पढ़े। पढ़ने की जरूरत भी क्या थी। चुनाव तो आदित्य कर ही चुका था—अपनी स्टेनो के भाई का। इसी लालच में तो खूबसूरत स्टेनो ने अपनी कई शामें आदित्य के साथ गुजार चुकी थी। आदित्य भी उसकी गदराई जवानी का कृतार्थ बन चुका था। उसके बदले अगर वह उसके भाई को नौकरी पर रख ही लेता है तो कौन सी बड़ी कीमत हो गई उसकी भरी पूरी रूप लावण्य से परिपूर्ण जवानी की। फिर भी खानापूरी तो करनी ही थी। पांच छः आवेदन पत्र रखकर बाकी आवेदनों को कूड़ेदान में फेंक दिया गया। छः प्रत्याशियों के इन्टरव्यू के लिये बुलाया गया। तीन को इन्टरव्यू में ही अयोग्य ठहरा दिया गया। दो को झूठा आश्वासन दे दिया गया। स्टेनो के भाई को सबसे उपयुक्त उम्मीदवार ठहराकर उसका नाम अग्रसारित कर दिया गया।

कुछ दिन बाद आदित्य ने अनीता को अपने ही केबिन में बुला लिया—'खेद है तुम्हारा काम मैं नहीं कर सका। बुरा मत मानना। मेरी भी लाचारी थी। देखो तुम्हारे भाई से भी ज्यादा प्रतिभावान लड़के यहां आ धमके थे और तुम्हारे भाई की अपेक्षा बहुत कम ही वेतन की मांग कर रहे थे।'

अनीता को बड़ा अटपटा सा लगा। मन खींझ सा गया। स्वयं को संतुलित करना चाहा, किंतु हो नहीं पायी—'अगर तुम्हारे चुनाव का आधार प्रतिभा होता तो शायद मेरा भाई ही सबसे योग्य ठहरता।'

आदित्य के शब्दों में कुछ रूखापन सा आ गया—

'तुम कहना क्या चाहती हो?'

'बड़ी तकलीफ होती है यह सोचकर कि तुम्हारे जैसे नवयुवक भी गलत रास्ता अख्तियार कर लेते हैं। अपनी व्यक्तिगत सुख सुविधा के खातिर समष्टि का गला घोंटते रहते हैं। सत्य को चीड़-फाड़कर पेड़ पर टांग देते हैं।' अपने ऊपर लगाये गये आरोप से आदित्य तिलमिला सा

गया। आपे से बाहर हो गया और चीख पड़ा 'वी हेव प्रोपर्ली'

अनीता भी झुंझला उठी। आवेदन पत्र को उसके सामने ही फाड़कर उसी के कूड़ेदान में फेंक दिया और 'सॉरी सर' कहती हुई बाहर निकल गई।

अनीता के मुंह से 'सर' शब्द का सम्बोधन कांटे की तरह आदित्य को गहरे तक चुभो गया। उसे लगा कि बीच चौराहे पर दिन दहाड़े उसे नंगा कर दिया गया है। अपने सहायकों या अन्य अफसरों के मुंह से 'सर' शब्द सुनकर वह गर्व से फूल जाता था, स्वयं को बड़ा प्रतिष्ठा और ओहदे का आदमी समझता था। मगर अनीता के मुंह से हमेशा तुम या आदित्य ही उसे अच्छा लगता आ रहा है।

अनीता के कमरे से बाहर जाने के बाद ही आदित्य का अंतकरण हाहाकार करने लगा। इच्छा हुई कि अभी जाकर अनीता से मिल ले, जैसे भी हो मना ले, स्थिति से वाकिफ करा दे। यह भी बहाना तो बना ही सकता है कि जिस लड़के की नियुक्ति होने जा रही है, वह मैनेजिंग डायरेक्टर के एक दोस्त का सिफारिशी खत लेकर आया था। तब वह क्या करता? अचानक ही उसने अनीता का नम्बर डायल कर दिया। फोन अनीता ने ही उठाया था। लेकिन 'हेलो' शब्द की आवाज पहचान कर ही अनीता ने रिसीवर पटक दिया था। आदित्य फोन का चोगा कान से सटाये ही रह गया था। अनीता का ऐसा व्यवहार उसे और भी कुरेद गया था, जख्मी कर गया था। उसके बाद तो उसका मन काम में बिलकुल लगा ही नहीं। बार-बार अनीता द्वारा व्यक्त 'सर' कानों में गूंजता रहता और गूंज-गूंजकर उस पर आक्रमण करता रहता। अनीता से मिलने के उधेड़बुन में वह कई बार अपनी सीट से उठा था, बाहर आया था और लौट गया था। अंत में इसी निश्चय पर पहुंचा कि छुट्टी के बाद ही अनीता से मिल ले। अगर वह तैयार हो जाये तो 'रैम्बल' या 'गेलार्ड' में बैठकर उससे बातचीत कर ली जाये और किसी न किसी बहाने उसे आश्वस्त कर दिया जाये कि उसकी पूरी कोशिश थी कि उसके भाई की ही नियुक्ति हो, मगर वह क्या करता। मैनेजिंग डायरेक्टर के सामने उसकी कुछ नहीं चल पाई।

छुट्टी होते ही वह बाहर निकल गया, अनीता के बाहर आने की

प्रतीक्षा करता रहा। काफी देर तक प्रतीक्षा किया, किंतु अनीता बाहर न निकली तो वह फिर सीढ़ियां चढ़ गया। अनीता के केबिन की ओर देखा तो वह खाली पड़ा था।

दरअसल जिस अफसरी अंदाज में आदित्य ने कहा था 'वीहेव प्रोपर्ली' उससे अनीता भी तिलमिला सी गई थी। अनीता की भावना को भी ठेस पहुंची थी। उसका अंतकरण भी चीख उठा था। इसलिये दो घंटे पहले ही वह छुट्टी लेकर चली गई थी। मगर पिछला सब कुछ याद आ रहा था।

पहले ही दिन की बात है। साइरन बजते ही सभी लोग लंच करने चले गये थे। वह अपनी सीट पर बैठी रह गई थी। नवागन्तुका थी इसलिये थोड़ी सी झिझक हो रही थी। सब के चले जाने के बाद वह भी उठी थी और धीरे-धीरे सीढ़ियां उतरकर 'महावीर' में घुस गई थी। बेयरा अभी आर्डर ले ही रहा था कि आदित्य सामने वाली सीट पर आकर बैठ गया था—

'आपने आज ही ज्वाइन किया है?'

'हां'

'लोग मुझे आदित्य कहते हैं। मैं भी यहां नया ही आया हूं।'

'बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर' अनीता ने कहा और बैरा दोनों का आर्डर लेकर चला गया। अनीता के मना करने पर भी जब आदित्य ने पूरा बिल चुका दिया तो अनीता के चेहरे पर ऐसा भाव उमड़ पड़ा कि आदित्य के मुंह से निकल गया 'आप बुरा मान गई?'

'बुरा मानने की इसमें क्या बात है? कल मेरी बारी।' अनीता की आवाज में काफी स्पष्टता थी और दोनों मुस्कुरा उठे। बड़ा अच्छा लगा था अनीता को प्रथम मुलाकात में ही आदित्य का ऐसा खुला व्यवहार।

छुट्टी होते ही अनीता दफ्तर से निकली और मद्रास होटल के स्टैण्ड पर चली गई। बड़ी लम्बी लाइन थी—मद्रास होटल से शुरू होकर लाइन शिवाजी स्टेडियम के गेट तक पहुंच गई थी। इतनी लम्बी लाइन देखकर अनीता का मन घबराने सा लगा था। अभी लाइन में लगी ही थी कि आदित्य आ गया। आदित्य उससे कुछ दूर आगे लाइन में खड़ा था।

'हेलो, आप भी इधर ही कहीं रहती हैं?'

'हां कीर्तिनगर और आप?'

'तब तो रोज का साथ रहेगा। मैं भी उधर ही रहता हूं—रजौरी गार्डेन।'

'इतनी लम्बी लाइन। लगता है पांचवी छठी बस में ही नम्बर आ पायेगा?'

'आपका पहला दिन है न! इसलिये मन घबरा रहा है। हम लोग तो आदी हो चुके हैं।'

'अगर सच पूछिये तो हमारे राष्ट्र की अवनति का एक यह भी कारण है कि इस देश में समय का कोई मूल्य नहीं है। समय के सदुपयोग से ही कोई व्यक्ति या राष्ट्र महान बनता है। यहीं देखिये—हजारो लोग खड़े हैं। उन्हें एक घंटा भी खड़ा रहना पड़े तो हजार घंटे समय शक्ति की बर्बादी हुई न।'

आदित्य हामी भरकर रह गया—कारण इस विषय पर उसने कभी सोचा नहीं था। किंतु इसी बात पर अनीता बहुत सीरियस सी हो गई। तभी मूंगफली वाला आया। आदित्य मूंगफली लेकर अनीता की ओर बढ़ाते हुए बोला 'मूंगफली खाइये—बस के आने में अभी बहुत देर है।'

'शुक्रिया' और मूंगफली के छिलके को तोड़ती बोली, 'समय पास करने का अच्छा जरिया है मूंगफली तोड़ना'। आदित्य मुस्कुराते हुए बोला, 'हमारे कॉलेज में एक बार लड़कों ने निश्चय किया था कि मूंगफली को राष्ट्रीय सूखा फल घोषित करने के लिये आन्दोलन छेड़ दिया जाये। क्योंकि मूंगफली ही ऐसा फल है जो समाज के सभी तबके के लोग खाते हैं और इस देश में सर्वत्र सहज उपलब्ध है।'

एक तो आइडिया नया था, दूसरा आदित्य के कहने का लहजा भी इतना लचीला था कि अनीता हंस उठी और आदित्य भी खिलखिला उठा। फिर तो यह रोज की बात हो गई। साथ-साथ लंच करना और शाम को दफ्तर से निकलकर साथ-साथ बस स्टैण्ड तक आना साथ-साथ बस में सफर करना। बड़ा अच्छा लगता था। दोनों को एक दूसरे का सान्निध्य। दोनों के बीच खूब जमकर बातें होती। व्यक्तिगत रुचियों,

शौक से लेकर राजनीति फिल्म पर खुले रूप में चर्चा होती। यों अनीता कोई खास सुन्दर नहीं थी, फिर भी अपनी सादगी में वह इतनी आकर्षक लगती थी जैसे कला की साधना करने वाली साक्षात देवी हो, मुख मुद्रा हमेशा गंभीर फिर भी चेहरे पर हमेशा हास उल्लास की छाप। बिलकुल नाप तौलकर सधे अनुभवों को सरल शब्दों द्वारा धीरे-धीरे बोलना। वर्तमान सामाजिक राजनैतिक परिवेश का बहुत तीक्ष्ण अनुभव था अनीता को। अपने तई वह इसी प्रयास में रहती थी कि वर्तमान परिवेश की विषाक्तता खत्म हो। एक रोज अनीता कह बैठी—"हमारी सरकार गरीबी हटाओ और समाजवाद का राग अलाप रही है। इसलिये हर साल बजट में सुविधा सम्पन्न लोगों पर यानी पूंजीपतियों, व्यापारियों उद्योगपतियों पर अधिक से अधिक कर लगाती है ताकि उनके वैभव विलास में कमी हो, सामान्यजन को राहत मिले, असमानता की खाई धीरे-धीरे मिटती जाये। मगर असर इसका उलटा ही होता है। बड़े लोगों के वैभव विलास में कोई कमी नहीं आती, असमानता की खाई बढ़ती जाती है और पिसती रहती है सामान्य जनता। बड़े लोगों पर लगाया कर परोक्ष रूप से सामान्य जनता पर ही आकर गिरता है। इसकी वजह हम चार्टेड एकाऊंटेन्ट हैं। हमें सरकार ने इसलिये लाइसेंस दिया है कि हम उद्योग व्यवसाय का लेखा जोखा ठीक ढंग से करें, लाभ हानि का गणन उचित तरीके से करें, सही कर अदा करवायें। मगर हम अपनी सुख सुविधा के चांदी के चन्द टुकड़ों के लिये उनके हाथ बिक जाते हैं। हमारी सारी प्रतिभा, बुद्धि कुशलता, सूझ बूझ मुनाफे का गबन, काले धन के व्यवसाय को प्रोत्साहन एवं करों की चोरी करने में ही बीत जाती है। आज जो इस देश में काले धन की समानान्तर अर्थ व्यवस्था चल रही है, अरबों रुपयों का गबन आयकर विक्रय कर उत्पाद कर के रूप में हर साल होता है इसके जिम्मेवार हम चार्टेड एकाउन्टेन्ट हैं। अगर यह वर्ग सतर्क हो जाये, अपने नैतिक दायित्व को समझे, तभी मुनाफा खोरी काले बाजारी का धंधा रूक सकता है, तभी सरमायेदारों के वैभव विलास में कमी आ सकती है, सामान्य जनताको राहत मिल सकती है, 'गरीबी हटाओ' के नारे का संकल्प पूरा हो सकता है। लेकिन लगता है तमाम गलत

किस्म के व्यवसायी, दायित्वहीन अनैतिक लोग इस पेशे में घुस आये हैं और काले धन के व्यवसाय का संरक्षक बन खुद भी आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न हो जाना चाहते हैं। लेकिन मैं ऐसा काम किसी भी शर्त पर कतई करने को तैयार नहीं हूं जो अनैतिक हो अवैधानिक हो। भले ही इसके लिये मुझे नौकरी से भी क्यों न हाथ धोना पड़े। यही मेरे जीवन का आदर्श है, लक्ष्य है।'

आदित्य बहुत प्रभावित हुआ था, अनीता की विचारधारा से। वह स्वयं भी तो शुरू से आदर्शवादी रहा है और सोचता रहा है कि सरकार के तमाम प्रयत्नों के बावजूद देश के औद्योगिक विकास का सारा लाभ चन्द लोगों की तिजोरी में चला जाता है। मेहनतकश लोग गरीब से कंगाल होते जाते हैं। इस व्यवस्था में परिवर्तन निहायत जरूरी है। अर्थशास्त्र शुरू से ही उसका मुख्य विषय रहा है, अर्थशास्त्र के आंकड़ों में उसकी गहरी रुचि रही है। अर्थशास्त्र के आंकड़े उसकी चेतना को रुला देते थे। इस आदर्शवाद ने दोनों को और नजदीक ला दिया था। अनीता ने कहा था, 'हमारी पूर्ववर्ती पीढ़ी हमारा साथ नहीं देगी, वह बिक चुकी है, वह अपनी नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व की चेतना का खून कर चुकी है। हमें उनसे सहयोग की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इस पेशे में नये नये आये युवक युवतियों का हमें संगठन बनाना चाहिये जो इस पेशे के शुद्धिकरण के लिये प्रयत्न करें और वक्त आने पर किसी भी खतरे को झेलने के लिये तैयार रहें। यह कितनी शर्म की बात है कि हमारे मेहनतकश भाई सालों भर जी जान लगाकर परिश्रम करते हैं कि वे ज्यादा उत्पादन करेंगे, कम्पनी को ज्यादा लाभ होगा और तब वे ऊंचे बोनस की मांग कर सकते हैं। मगर साल के अंत में कम्पनी के हिसाब में घाटा हो जाता है जबकि कम्पनी के मालिकों के पास हर साल नई कार कोठियां आ जाती हैं, हर साल विदेशी बैकों में बैलेन्स बढ़ जाता है, वैभवविलास के साधनों में वृद्धि हो जाती है। मुनाफे की ऐसी हेरा फेरी हमारे द्वारा ही होती है। हमारे हस्ताक्षर को प्रामाणिक मानकर ही सरकार उसे स्वीकार कर लेती है।'

अनीता आदित्य पर बहुत भरोसा कर चुकी थी। सोचती थी 'आदित्य

जैसा लगनशील साथी उसे मिल गया। एक से दो हो गये तो दो से तीन चार होने में देर नहीं लगेगी। जब हम अपने उद्देश्य के प्रति ईमानदार रहेंगे तो जनता भी हमारा साथ जरूर देगी।'

यों तो आदित्य अनीता के विचारों से सहमत था। मगर वह सोचता था–'इस आर्थिक युग में बगैर अर्थ के कुछ भी संभव नहीं। बगैर अर्थ के हम कुछ भी नहीं कर सकते। अतएव हमारा प्रथम उद्देश्य येन केन प्रकारेण आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न होना चाहिये। एक नौकरी पेशा आदमी आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न तभी हो सकता है जब जल्दी जल्दी प्रोन्नति होती जाये, वेतन में वृद्धि होती जाये, कमाई का और जरिया निकल जाये। यह बगैर चमचागिरी या जीहुजूरी के संभव नही।' वह इस सत्य को अच्छी तरह जानता था, अतएव हमेशा मैनेजिंग डायरेक्टर के आगे पीछे डोलता रहता था। सुबह आते ही मैनेजिंग डायरेक्टर के केबिन में जाकर दुआ सलाम करना, बीच-बीच में छोटी-छोटी बातों के बहाने ही उससे अधिक से अधिक व्यक्तिगत सम्पर्क बढ़ाने की कोशिश करना शाम को बगैर मिले दफ्तर से बाहर नहीं निकलना। अनीता इस सबके विरुद्ध थी। वह कहती थी 'आठ घंटे के लिये अपना श्रम बेचने आती हूं। वे खरीदते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध मैं इन सरमायेदारों से नहीं रखना चाहती।' कई शाम वह आफिस से निकलती तो मैनेजिंग डायरेक्टर भी उतरता। वह पंजाबी बाग रहता था। मोतीनगर तक अपनी कार में लिफ्ट देने के लिये तैयार रहता, आग्रह करता। किंतु हर बार वह कोई न कोई बहाना बनाकर नकार जाती, जबकि आदित्य बड़े मजे से आग्रह स्वीकार कर लेता। आदित्य का ऐसा ओछापन उसे खलता भी था। किंतु वह सोचती थी 'एक वृहत्त या महत्त उद्देश्य के लिये हमें किसी के निजी गुण दोष पर इतना तूल नहीं देना चाहिये। यही क्या कम है कि हमारी मंजिल एक ही है।'

मगर आदित्य का चाटुकारिता भरा स्वभाव, हमेशा मौके की तलाश में रहना, मैनेजिंग डायरेक्टर की नजरों में उसे चढ़ा दिया था। वफादार आदमी समझकर मैनेजिंग डायरेक्टर ने गुप्त रूप से उसकी पदोन्नति कर दिया था। कम्पनी से और भी कई सुविधायें उसे मिल गई थी।

हरित क्रांति को सफल बनाने के लिये कृषि कार्य सम्बन्धी यंत्र एवं उपकरणों की विशेष मांग थी। इन यंत्रों को बनाने का लाइसेंस कम्पनी को मिल गया था। तदर्थ सुलभ दरों पर सरकारी की तरफ से लोहा और इस्पात का मासिक कोटा मिल गया था। कृषि उद्योग विकसित हो, इसलिये सरकार ने कृषि उपकरणों को उत्पाद शुल्क रहित विक्रय कर रहित कर दिया था। मगर यहां दूसरा ही धंधा चालू हो गया था। कृषि उपकरण बनाने के लिये सस्ते दर में प्राप्त इस्पात से बाजारू चीजें बनाकर काले बाजार में बेच दिये जाते थे। कृषि उपकरणों संयंत्रों का उत्पादन विक्रय सिर्फ कागज पर होते थे। यह सारी जिम्मेदारी आदित्य पर छोड़ दी गई थी कि वह इस हिसाब को इस तरह ठीक बैठाये, इस तरह हेरा-फेरी करे कि असलियत का कोई पता ही न लगे। कृषि उपकरण विक्रय कर उत्पाद शुल्क से मुक्त था। इसलिये खास दिक्कत भी नहीं थी। मुख्य वेतन के अलावे आदित्य को इस कार्य के लिये अलग से अतिरिक्त रकम मिलने लगी थी।

आदित्य बहुत खुश था। उसकी मनोभिलाषा पूरी होती जा रही थी। येन केन प्रकारेण सुसम्पन्न हो जाये, यही तो उसकी लालसा थी। जैसे जैसे उसकी जेबें भरने लगी थी, अनीता के आदर्शवाद में उसकी आस्था क्षीण होने लगी थी। अनीता से वह कतराने लगा था। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि अनीता रेगिस्तान में पानी खोज रही है, छटपटा कर मर जायेगी—कोई साथ नहीं देगा। सतही तौर पर भी अनीता में उसकी रुचि खत्म हो गयी थी। इसका एक और कारण था। मैनेजिंग डायरेक्टर के प्रिय बन जाने के कारण दफ्तर में उसका रौब और भी बढ़ गया था। यही वजह थीं कि आफिस की कई लड़कियां उसकी तरफ आकर्षित हो गई थी। मगर वह खुद टेलीफोन आपरेटर गोपी दीवान पर दीवाना सा बन गया था। जरा सा मौका मिलते ही उसे फोन पर ही छेड़ देता, वह भी ऐसी दीवानी बन गई थी कि फोन पर ही मुहब्बत का इजहार करने लगती।

आदित्य में आये इस परितर्वन को अनीता भी महसूस कर रही थी। यह भी वह महसूस करने लगी थी कि आदित्य उससे दूर होता

जा रहा है, उसमें आदित्य की रुचि कम होती जा रही है। मगर आदित्य इतनी जल्दी बदल जायेगा, इतनी जल्दी बहक जायेगा। अनीता अनुमान नहीं लगा सकी। लेकिन एक दिन विश्वास की इमारत नींव सहित ढह गई। सपने का शीशा टूटकर चकनाचूर हो गया। वह किसी काम से आदित्य के केबिन में घुस रही थी कि आदित्य के फोन की घंटी टनटना उठी। आदित्य ने फोन उठाया और फोन को ही चूम लिया। उसके केबिन में प्रवेश करते ही आदित्य ने रिसीवर पर हाथ रख लिया, बड़ा भद्दा सस्ता एवं घिनौना लगा आदित्य का यह व्यवहार। वह तिलमिला कर रह गई। करती भी क्या? उसे कुछ कहे—ऐसा उसे अधिकार भी क्या था? मगर अनीता को इसमें कोई शक नहीं रहा कि आदित्य मुनाफाखोरों एवं कालेबाजारियों के हाथों बिक चुका है। आदित्य भी अब उन करोड़ों युवकों से कतई भिन्न नहीं है जिनकी रुचि सिर्फ हसीन लड़कियों में होती है जिनका शौक सिर्फ आधुनिक डिजाइन एवं माडल के रंग बिरंगे कपड़े पहनना होता है एवं जिनके जीवन का उद्‌देश्य येन केन प्रकारेण अधिक से अधिक धन संग्रह करना होता है। यह यथार्थ बोध ही अनीता को इस तरह कचोट गई, इस तरह तोड़-मरोड़ गई कि वह खुद को नर्वस सी महसूस करने लगी। दूर तो वह पहले ही रहने लगी थी—आदित्य से जितनी कम मुलाकात हो, सम्पर्क हो वह यही चाहती थी। शाम को बस पकड़ने के लिये अगर आदित्य मद्रास होटल की ओर जाता तो वह रीगल की ओर चली जाती। लंच में भी कोई न कोई बहाना बना लेती। आदित्य चला जाता तो चपरासी के हाथ से अपने लिये केबिन मे ही कुछ मंगवा लेती।

कुछ दिन बाद तो उसे लगा कि अब इस आफिस में आना उसके लिये अत्यन्त ही कष्टकर एवं असह्य सा है। आदित्य जिसको वह इतना नजदीक समझती थी, अपना हम सफर समझती थी वह इस तरह विश्वासघात करेगा। उसे ऐसी उम्मीद नहीं थी। आदित्य की छाया से भी नफरत करने लगी थी। चाहती थी कि आदित्य से जितनी दूर हो सके, वह चली जाये। किंतु यह तभी संभव जबकि वह यह नौकरी छोड़ दे या दूसरे ब्रांच में चली जाये। नौकरी छोड़ना पारिवारिक स्थिति के कारण

उचित नहीं था। ऐसी ही मानसिक स्थिति में उसने एक सप्ताह की छुट्टी के साथ-साथ अपनी बदली के लिये भी आवेदन दे दिया। और उसकी बदली आसफ अली रोड शाखा में हो गई। इससे अनीता को कुछ मानसिक राहत मिली। इस बात का आदित्य को भी कोई गम नहीं था। अपितु उसे खुशी ही हुई थी। फिर भी मन के बहुत दूर कोने में उसे लगा था कि यह सब मैनेजिंग डायरेक्टर के सुपुत्र अरुण अंसल की चाल है। एक साल पहले न्यूयार्क से एम. बी. ए. की डिग्री लेकर लौटा है। आसफ अलीरोड शाखा का वही सर्वेसर्वा है। उसके चरित्र से कौन परिचित नहीं है। आफिस में कौन ऐसी लड़की है जो उससे अछूती है। हां अछूती थी तो सिर्फ अनीता अपने आदर्शवाद के बल पर। आदित्य को लगा था कि अनीता को अपने जाल में फंसाने के लिये ही अरुण अंसल ने यह चाल चली है। बाह्य मन तर्क करने लगा था 'जहन्नुम मे जाये अनीता उससे उसका मतलब ही क्या है?' फिर भी मन का एक कोना अनीता के लिये चीत्कार कर ही रहा था।

अनीता से सम्पर्क टूट सा ही गया था। बीच में कभी कभार दफ्तर के किसी काम से फोन पर ही बातचीत हो जाती। एक दो बार अनीता कनाट प्लेस आफिस आई भी तो आदित्य से मिले बगैर चली गई। आदित्य को इस बात से चोट भी लगी। एक बार आदित्य को दफ्तर के ही किसी काम से अनीता के पास जाना पड़ा। न जाने अनीता में ऐसी कौन सी चमक थी, चेहरे पर विलक्षणता थी कि आदित्य के मुंह से अकस्मात निकल गया था, 'क्या हम अपने सम्बन्ध को 'नारमलाइज' नहीं कर सकते।'

अनीता बोल पड़ी थी, 'इसकी जरूरत ही क्या है जब हमारी राह ही अलग हो गई है। आप तो उड़न तश्तरी में उड़ान भर रहे हैं।' अनीता की बोली में कुछ ऐसी वेदना छिपी थी कि उसके शब्द थरथरा उठे थे। आदित्य कुछ बोल नहीं पाया था। पिछले कुछ दिनों से दफ्तर के वातावरण में एक अजीब ही गरमा गरमी थी। हर एक की जुबान पर एक ही चर्चा—'अब अनीता का क्या होगा? क्या सचमुच अनीता दोषी है?' मुख्य कम्पनी के अतिरिक्त कई छोटी छोटी कंपनियां थीं।

अनीता जिस कम्पनी की इंचार्ज थी, उसके लाभ-हानि के हिसाब को आयकर वालों ने चैलेंज कर दिया था। उनका आरोप था कि इसमें करोड़ों रुपये के मुनाफे का गबन किया गया है। करोड़ो रुपये के ऐसे खर्च जिससे कम्पनी के व्यवसाय का कोई ताल्लुक नहीं जैसे अरुण अंसल के पेरिस न्यूयार्क और हांगकांग के होटल के खर्च, उसके द्वारा अपने दोस्तों को भेजे गये कीमती उपहार के खर्चे, पत्नी के लिये खरीदे गये कीमती हीरे जवाहरात के गहनों के खर्चे कम्पनी के लाभ-हानि के हिसाब में सम्मिलित किये गये थे। अरुण अंसल साफ नकार गया था कि उसने ऐसा कोई निर्देश दिया था। अगर निर्देश दिया भी होगा तो सारे खर्चे उसके व्यक्तिगत खाते में डालने के लिये। सारी जिम्मेदारी अनीता पर आ गई थी। चर्चा थी कि आयकर वाले इंस्टीच्यूट ऑफ चार्टड एकाउन्टेन्ट को पैरवी करने वाले हैं कि अनीता की मान्यता रद्द कर दी जाये। अगर ऐसा हो जाये तो अनीता का कैरियर चौपट्ट। जिंदगी बर्बाद। इसी बात से आदित्य काफी परेशान हो गया था। मन में अजीब ही उद्विग्नता समा गयी थी। खुद को कितना भी संतुलित करने की कोशिश करता, संतुलित नहीं हो पाता। वह सोच नहीं पा रहा था कि अनीता जिस जाल को तोड़ना चाहती थी, उस जाल में स्वयं कैसे फंस गई? कहीं अरुण अंसल की यह नयी चाल तो नहीं? अपनी दाल न गलती देखकर अनीता को फंसाने के लिये उसने यह तरकीब निकाली हो? जो कुछ भी हो अनीता उसकी प्रथम साथी रही है। अनीता और उसने साथ-साथ एक व्रंत लिया था। सुख-सुविधा के चक्कर में पड़कर उसके साथ विश्वासघात कर चुका है। यह आत्मबोध कई दिनों से उसे कचोट रहा था, उसकी चेतना को कुरेद रहा था। साथ ही साथ एक और आशंका उसे घायल कर रही थी, 'आज जो कुछ अनीता के साथ हुआ है—कल उसके साथभी वही हो सकता है।' कल दफ्तर से जल्दी निकल शराब के कई पेग उड़ेल गया था—ताकि इस स्थिति पर विजय पा सके। मगर बार-बार अनीता की यह उक्ति उस पर आक्रमण करती रही थी, 'बैल और आदमी में तब फर्क ही क्या रह गया। बैल को खाना खिला दो, उससे उल्टा सीधा काम ले लो, जितना अच्छा खाना खिलाओगे, उससे उतना ही

काम ले सकते हो, आदमी को भी खाना खिला दो, जीवन की सुख सुविधा, वैभव विलास के साधन प्रदान कर दो उससे उल्टा सीधा, गलत सलत, असामाजिक असवैधानिक जैसा काम करवाना हो, करवा लो। तब आदमी की सचेतना कहां गई? जिस आदमी में सत्य असत्य का विवेक नहीं, जिसकी चेतना सिर्फ सुख-सुविधा के इर्द गिर्द घूमती रहती है, वह पशु तुल्य होता है। हमसे अच्छे नैतिक और ईमानदार तो डकैत हैं, जो डकैती करते हैं जोखिम उठाते हैं तो समाज में बदनाम होते हैं। हम डकैती करते हैं फिर भी समाज में सोहरत पाते हैं।'

आदित्य तर्क करने लगा था 'वह भी तो डकैती कर रहा है। अन्न पर सारा संसार निर्भर है। हमारा देश भी अन्न के मामले में आत्मनिर्भर बने, हरित क्रान्ति का सपना साकार हो, इसलिये सरकार कृषि उद्योग को बढ़ावा दे रही है और वह कृषि संयंत्रों का उत्पादन विक्रय सिर्फ कागज पर कर, राष्ट्र के भविष्य के साथ ही नहीं करोड़ों लोगों के अस्तित्व के साथ खिलवाड़ कर रहा है। वाह रे आदित्य! अनीता तो बिलकुल सही राह पर थी, भटक तो वह गया है। किंतु अनीता को इस स्थिति से उबार भी वही सकता है। वह कंपनी के गुप्त रहस्यों को जानता है, जिसकी अगर वह कलई खोल दे तो कम्पनी के मालिक जेल में ठूंस दिये जायेंगे। अपनी इसी स्थिति से फायदा उठाकर वह अगर अरुण अंसल पर दबाव डाले तभी अनीता बच सकती है।'

वह इसी उधेड़बुन में पड़ा था कि कुल्हे मटकाती गोपी दीवान आ गई थी। आदित्य परेशान है, उद्विग्न है—इसी कारण दफ्तर से कल जल्दी चला गया—गोपी दीवान इस बात से वाकिफ थी। व्यक्तिगत सहानुभूति दर्शाने उसके केबिन में चली आयी थी। आते ही उसने दोनों हाथ आदित्य के गले में डाल दिया और झूलती हुई विशेष अंदाज में कमर को मोड़ती हुई बोली—'क्यों इतना परेशान हो? मेरी आंखों में झांककर देखो...मेरी सांसों की सुगंध को सूंघो...।'

गोपी दीवान केहाथों को झटककर आदित्य कुर्सी से उठ गया। गोपी दीवान देखती रह गई और आदित्य बाहर सड़क पर चला आया। अनीता के पास जाने के लिये टैक्सी तलाशने लगा।

अब गुलाब नहीं गमकेगा?

हर सुबह जन्म लेता हूं और हर शाम मर जाता हूं। हर सुबह नयी नयी कल्पनायें करता हूं, योजनायें बनाता हूं, लेकिन शाम होते होते हर कल्पना हर योजना रोजी रोटी की दीवार से टूटकर चूरचूर होकर बिखर जाती है, ढह जाती है।

अंधकार छा जाने पर बसों की भीड़ में कोहनी से कोहनी दबाते पसीने से लथपथ घर लौटता हूं तो मुर्दा सा बन जाता हूं। उस समय कितनी विकट लालसा होती है। काश! अपना भी कोई होता प्रतीक्षा करने वाला होता! मगर ऐसी नसीब कहाँ। कोई सूरत न सही किसी का अपनत्व भरा पत्र ही अगर प्रतीक्षा कर रहा होता तो कितनी राहत महसूस होती। घर आते ही सर्वप्रथम पत्र पेट्टिका टटोलता हूं, बार-बार टटोलता हूं। कहीं किसी का पत्र कोने में दुबका हुआ मिल जाये। लेकिन कौन है अपना जो पत्र लिख सके? संगी साथी रिश्तेनाते सभी टूट गये, बिछुड़ गये। कभी-कभी टटोलने पर कुछ हाथ भी लग जाता है तो सधन्यवाद, बिना धन्यवाद रचनाओं की वापसी। फिर भी खुशी होती है—कम से कम रचना तो वापस आ गई अन्यथा अधिकतर सम्पादक तो वापसी के लिये भेजे गये टिकटों का उपयोग भी स्वयं कर लेते हैं, और तब मुंह लटकाये गर्दन झुकाये स्वयं में गुनगुनाते

'हृदय से बाहर होकर
मेरी अपनी कामना
फिरती है मरीचिका के समान
दोनों हाथ फैलाकर उसे फिर से लेना चाहता हूं

तो वह हृदय में नहीं लौटती
जो कुछ चाहता हूं, भूल से चाहता हूं
जो कुछ पाता हूं वह तो नहीं चाहता मैं
जो कुछ पाता हूं उसे अपना समझ कर
घर ले आता हूं अपना मन बहलाने
अंत में देखता हूं सब कुछ टूटकर बिखर जाता है
धूल मे मिलकर धूल हो जाने के लिये।'

(टैगोर की कविता)

तत्पश्चात रात देर तक बार-बार आंखों को पानी से पोछ पोछ कर लिखता रहता हूं सड़क की कहानी, सड़क की कविता, सड़क की पीड़ा। और जब आंखे जवाब देने लगती हैं, झपकियां लेते-लेते सर मेज से टकराने लगता है, चारपाई पर आकर पसर जाता हूं और 'तब जन्म लेती है इतने अकथनीय रूप से एक लालसा कि कोई अच्छा होता, अपना होता, आत्मीय होता, अंतरंग होता, साथी होता और जिसको मैं पत्र लिख सकता। उसे लिख देता सब कुछ जो मेरे अंतर में है। पत्र तो मैं लिखता हूं लेकिन वह जो नहीं है।'

ऐसी ही स्थिति में उस दिन पत्र-पट्टिका टटोला तो एक लिफाफा हाथ आ गया। अचम्भे में पड़ गया, पते की लिखावट अनजानी अनपहचानी। किसी सम्पादक का तो पत्र हो ही नहीं सकता। तब किसका? उत्सुकतावश लिफाफे को बेतरतीव ढंग से फाड़ दिया। अन्दर गोलमटोल अक्षरों में लिखा एक पत्र। पत्र की कुछ पंक्तियां, 'अचानक ही एक पत्रिका हाथ लग गई। उसी में तुम्हारी कहानी पढ़ने को मिली और साथ ही साथ तुम्हारा पता भी मिल गया। आखिरकार तुम लेखक बन ही गये। मैं तो सोचती थी कि जैसे हर तरुण अपने अध्ययन के दिनों में गोर्की, प्रेमचन्द, लिंकन, लेनिन और गांधी बनने का सपना देखता है। लेकिन बन जाता है किसी दफ्तर का बाबू और बहुत बना तो पदाधिकारी। तुम्हारी भी नियति ऐसी ही हो गई होगी? किंतु तुम बाजी मार गये। इस सफलता पर मेरी ओर से हार्दिक बधाई। तुम्हें तो मेरी याद भी नहीं रही होगी। याद भी कैसे रहे? तुम्हारे जैसा महत्वाकांक्षी आदमी

मुझ जैसी अनपढ़ साधारण लड़की की याद भी क्यों करे? न जाने क्यों तुमसे मिलने को मन व्याकुल सा रहता है। अब तुम्हारा पता भी मिल गया तो मन और व्यथित सा हो गया है। पता भी सही समय पर मिला है। अगले महीने मैं दिल्ली आ रही हूं तो वहीं तुमसे मिलूंगी। कृपया फौरन सूचित करना कि उन दिनों तुम दिल्ली रहोगे या नहीं? लौटती डाक से तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में—तुम्हारी गुलाबो।'

पत्र पढ़ते ही मेरी चेतना पन्द्रह वर्ष पहले की तरफ लौट आयी। उन दिनों मैं स्कूल फाइनल में था। वर्ग में प्रथम आता था। इसलिये कई विशेषाधिकार प्राप्त थे। वर्ग का मोनीटर था। कभी भी किसी लड़के को बेंच पर खड़ा कर सकता था, कान पकड़कर उठा बैठा सकता था। सभी लड़कों पर अच्छी धाक थी। प्राचार्य महोदय चाहते थे कि मुझे पढ़ने लिखने की इतनी सुविधा एवं सहूलियत मिले कि बोर्ड के इम्तहान में 'मेरिटलिस्ट' में आकर मैं विद्यालय का नाम रोशन करूं। इसलिये मेरी सीट अन्य लड़कों से अलग बेंच पर थी। उसी बेंच के दूसरे किनारे पर वह बैठती थी। विद्या उसका नाम था। वह घर से एक गुलाब का फूल लाती थी और मेज के बीचों बीच जो सुराख था उसमें खोंस देती थी। चूंकि वह कस्बे के संपन्न सेठ जो कि विद्यालय की प्रबन्ध समिति के मुखिया थे, की सुपुत्री थी, इस पर कोई आपत्ति उठाये किसी शिक्षक की हिम्मत नहीं होती। गुलाब के लाने का भी एक रहस्य था। उस छोटे से कस्बे में एक पुष्प वाटिका थी, जिसकी काफी चर्चा थी। बाहर से जो भी आता, उसकी लालसा वाटिका देखने की जरूर होती। उस दिन अपने एक सम्बन्धी के साथ वाटिका गया था। रंग बिरंगे फूल अपनी मनोहारी छटा बिखेर रहे थे। वैसे फूल तोड़ने की मनाही थी—फिर भी मैंने एक गुलाब तोड़ लिया था। पता नहीं माली कहां छिपा था, कैसे देख लिया? आ धमका और फूल छीन लिया। भला बुरा कहने लगा—डांट डपट करने लगा। थप्पड़ मारने के लिये हाथ ऊपर किया ही था कि विद्या टपक पड़ी थी। माली का उठा हाथ उठा ही रह गया था—माली के हाथ से छीनकर उसने गुलाब का फूल मेरे हाथ में थमा दिया था। यही उसके कोमल हाथों का पहला स्पर्श था।

'क्या गुलाब तुम्हें बहुत पसन्द है?' विद्या ने पूछा था और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर चार पांच और गुलाब के फूल तोड़ लाई—'यह लो अपनी पसन्द के फूल...'

और वह मुस्कुरा गई थी—बड़ी मधुर लगी थी उसकी मुस्कान। फिर जब तक हम वाटिका में रहे हमारे साथ ही घूमती रही। इसी दरम्यान उसने बताया था कि गुलाब उसका भी प्रिय फूल है और उसके घर का नाम भी गुलाबो है। उसी दिन मुझे आभास हुआ कि यह वाटिका उसी की है। दूसरे दिन स्कूल गया तो देखा डेस्क के बीचों बीच गुलाब अपनी छटा पर इतरा रहा था और गुलाब का इतराना वगैर नागा तब तक जारी रहा जब तक गुलाबो विद्यालय आती रही। वैसे तो उससे बातचीत नहीं के बरबर ही हो पाती थी, फिर भी हम कापी किताब का आदान प्रदान करते रहते थे और उसी बहाने मीठी मीठी रुमानी बातों से भरे प्रेम पत्र भी सरकाते रहते। कविताओं दोहों और गीतों से भरे अलंकारित भाषा में लिखे पुनीत प्यार के अमरत्व की दुहाई देते—कभी किसी सिनेमा की चर्चा, तो कभी किसी कहानी की चर्चा...।

उस दिन स्कूल का आखिरी दिन था—बोर्ड के इम्तहान की तैयारी के लिये छुट्टी हो गई थी। प्राचार्य महोदय ने बुलाया था—'जरा समय निकाल के विद्या के घर चले जाना—संस्कृत में उसे दिक्कत महसूस हो रही है, जरा गाइड कर दो।' मैं अचम्भे में पड़ गया था मैं ही क्यों? उसके पिता का ऐसा दबदबा था कि संस्कृत के आचार्य क्या कोई भी शिक्षक ना करने की हिम्मत नहीं कर सकता था। संभव है विद्या ने ही मेरे नाम की सिफारिश की हो। जो भी हो मुझे तो उसका साथ अच्छा ही लगता था। उसके घर जाने लगा था। बड़ी आवभगत होती थी। सबसे पहले उसकी मां आती थी...कभी रसमलाई, कभी गुलाब जामुन तो कभी खीर, 'पहले खा लो फिर पढ़ाई करना'—मां की हिदायत होती। और जब तक हम पढ़ते कोई न कोई आता हीरहता खाने पीने की चीजें लेकर...अधिकांश समय तो खाने पीने में ही बीत जाता था। हां यहां भी उसकी मेज पर एक गुलदस्ता जरूर होता था—ताजे महकते रंग बिरंगे गुलाबों का। जाते समय वह गुलाब के फूलों को अपने ओठों

से सटा लेती, फूल से अपने कोमल गालों को सहलाती, फिर गुलदस्ते को मुझे सौंप देती। बहुत सुहानी होती थी उसकी वह अदा।

संस्कृत के सारे अध्याय पूरे हो गये थे। रूप, क्रिया, समास सब कुछ हो चुका था। सन्धि विच्छेद पढ़ने को वह राजी नहीं थी। यह महज संयोग था या सुविचारित जिस दिन सन्धि विच्छेद पढ़ने को वह राजी हुई उसी दिन विच्छेद भी हो गया। पढ़ाई पूरी होते ही उसने गुलाब के फूलों से मेरे गालों का सहलाया—मेरे ओठों से सटाया और फिर अपने ओठों से सटाकर गालों को सहलाकर गुलदस्ते मेरी हथेली में थमा दिया। तभी मां आ गई 'बेटे कल से मत आना—यह लो मेरा आशीर्वाद'—मां ने एक 'गिफ्ट पैक' मेरे हाथ में पकड़ा दिया। मैं समझ नहीं सका था कि अकस्मात यह क्या हो गया। घर आकर देखा तो गुलदस्ते के बीचोबीच एक पुर्जी पड़ी थी 'अब गुलाब नहीं गमकेगा।' यह बाद में पता चला कि दूसरे ही दिन उसकी सगाई थी और बोर्ड की परीक्षा खत्म होते ही उसकी शादी हो गई थी। पहले वह एक सेठ की पुत्री थी और अब दूसरे सेठ की पुत्रवधू बन गई थी।

पन्द्रह वर्ष बाद उसी लड़की का पत्र पाकर मन खुशी से नाच उठा। लेकिन मेरी हर खुशी शीशे के प्रतिबिम्ब की तरह हो गई है जिसे क्षण भर ही टिकने का अधिकार होता है। दूसरे ही क्षण यह खुशी एक अजीब ही विषाद में बदल गया। उसके पत्र को पुनः पढ़ा 'आखिरकार तुम लेखक बन ही गये।' कितना सटीक व्यंग्य है मेरे वर्तमान पर। हूं! सफल लेखक!! सफल आदमी!!! बारह बारह घंटे पसीना बहाने पर भी सूखी रोटी नहीं मिल पाती। एक-एक रचनापर महीने भर माथा पच्ची करने पर भी पारिश्रमिक नहीं मिल पाता। व्यवसायिक क्या गैर व्यवसायिक पत्रिकाओं से भी रचना लौटा दी जाती, 'उसके दिमाग में मेरा क्या 'इमेज' होगा। मैं यानी अतीत में प्रतिभावान विद्यार्थी और अब एक प्रखर मुखर रचनाकार। नहीं नहीं वर्तमान में एक मामूली घिसा पीटा आदमी, अस्वीकृत लेखक। किस दलदल में फंस गया हूं। लेकिन मेरा वर्तमान मेरा अपना है, यह दुख मेरा अपना है, यह पीड़ा मेरी अपनी है। इसमें मैं किसी को शरीक नहीं कर सकता, किसी के सामने स्वयं

को बेचारा या सहानुभूति का पात्र भी नहीं बनाना चाहता। उसकी नजरों मे मैं अपनी 'इमेज' खराब ही क्यों करूं? रहने दो उसे भ्रम में कि मैं सफल लेखक हो गया हूं, विशिष्ट आदमी हो गया हूं, मेरा वर्तमान सुखद है, भविष्य स्वर्णिम है। फिर भी मन के किसी कोने में उसे पत्र लिखने की चाह थी ही। कई बार लिखने भी बैठा। क्या लिखूं, कहां से शुरूआत करूं इन्हीं भावनाओं एवं अन्तर्द्वन्द्वों से घिरा उसके पत्र का जवाब नहीं दे पाया।

रविवार की सुबह देर तक बिछौने पर पसरते रहने में एक अजीब ही आनन्द होता है। उस दिन भी इतवार था। आठ बजे के बाद ही बिछौना छोड़कर उठा था। वही फटी पुरानी लुंगी लटकाये अस्त व्यस्त बाल एवं मुरझाया चेहरा लिये बालकनी में चहलकदमी कर रहा था। किसी ऐसे प्लाट की तलाश में जो आज दिन भर व्यस्तता बनाये रखे। तभी गेट के पास एक टैक्सी आकर रुकी। टैक्सी से एक औरत उतरी—गुलाबी रंग की साड़ी में लिपटी, ललाट पर गोल-गोल गुलाबी बिंदी, लाल लाल सिंदूर की रेखा...कलाई में गुलाबी रंग की लाख की मोटी मोटी चूड़ियां, दो चोटियों में गूंथे बंधे काले काले बाल। मैं पहचान ही न पाया। पहचानता भी कैसे? मैंने तो देखा था पन्द्रह साल पहले स्कूल जाती एक भोली भाली लड़की को जो जवानी कीदहलीज पर पांव भी न रख पायी थी। जिसके पास भावना थी, प्यार था—मगर 'देह' नहीं थी। मासूमियत थी मांसलता नहीं। यह तो पूर्ण औरत थी—भरी पूरी गदराई देह रूप विन्यास ऐसा कि कला की प्रतिमा हो। वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगी—गौर से देखा—उसके हाथ में गुलाब का गुलदस्ता था। सीढ़ियों पर पड़ रहे उसके पदचाप से मेरी चेतना लौट गई। हक्का बक्का सा होकर उसकी ओर निहारा, घूरा। सीढ़ियाँ चढ़ती हुई वह ठिठक गई। मेरी ओर एक तेज निगाह कर फेंककर बोली, 'क्या पहचाना भी नहीं?' पहचानोगे भी कैसे?' वह बेफिक्री से बोल गई।

पन्द्रह साल बाद उसके मुंह से यह शब्द सुनकर मन रोमांचित हो उठा। क्षणभर को लगा कि जैसे स्वप्न लोक में पहुंच गया हूं। अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया 'गुलाबो।'

मेरे इस भाव विह्वल सम्बोधन का उस पर भी असर पड़ा। वह फुर्ती से सीढ़ियां चढ़ गई। 'कब आयीं? कहां ठहरी हो? अकेली हो?'

'नहीं तो वे भी हैं। सुबह ही बिजनेस के काम से निकल गये। तुम कैसे हो? मुझे तो बिलकुल ही भूल गये?'

'संधि-विच्छेद तो तुमने ही कर लिया। तुम्हारी सगाई ठीक हो गई थी—मुझे बताया तक नहीं।'

'लाज शर्म कहो या हिम्मत कहो—मैं मुंह से कुछ नहीं बोल पायी—मगर इशारा तो दे ही दिया था। खैर, तुम बताओ, इन पन्द्रह सालों में क्या क्या किया?' शादी क्यों नहीं की? क्या कोई 'गुलाबो' नहीं मिली?'

'यही समझ लो'

'मगर अब तो गुलाबो आ गई है।'

'मगर वह गुलाबो तो पन्द्रह साल पहले ही गुल हो गई थी। खैर छोड़ो कैसी रही तुम्हारी जिंदगी?'

वह बगैर क्षेंप के कह बैठी—जैसे कि बहुत दिनों से मुझे कहने के लिये सोचकर रखी हो 'घर गृहस्थी के खूंटे से बंधी अपनी क्या जिंदगी। सवेरे उठकर नहाओ, धोओ, मंदिर जाओ पूजा पाठ करो और फिर दिन भर व्यर्थ की बातें करती रहो। कोई काम नही सिवाय इसके कि कभी दो चार पापड़ बेल लेती हूं, दो चार अचार लगा देती हूं, कुछ मसाला कूट लेती हूं। कितना अच्छा होता खाली समय में पढ़ती लिखती। मगर वे तो समझते ही नहीं। अड़े हुए है क्या करोगी पढ़ लिखकर। कभी कभी बहुत जिद पकड़ लेती हूं तो दो चार जासूसी रोमाण्टिक किताबें लाकर पटक देते हैं।' बोलती-बोलती वह रुक गई और फिर विषय का क्रम बदलती बोली, 'सच सच बताओ। इन पन्द्रह सालों में कभी मेरी याद आयी? और अगर याद आई भी तो कैसे? किन क्षणों में, किस प्रसंग में?'

मैं भी भावुक हो गया था, पसीज गया था, 'गुलाबो अगर वर्तमान कुरूप हो तो अतीत सुन्दर लगता ही है।'

'तुम ठीक कह रहे हो—बचपन की हर चीज बहुत ही मधुर होती है—शायद इसलिये बचपन से प्रीति सी होती है। मैं तुम्हें कभी नहीं

भूल सकी। मगर तुम्हारा कोई अता पता नहीं था। उस दिन कहानी के साथ तुम्हारा नाम पता देखा तो मन अजीब सा हो गया। रात भर नींद नहीं आई। दिन भर चैन नहीं रही। यों तो पता देखकर ही निश्चय कर बैठी थी कि तुम्हें खत लिखूंगी—फिर भी एक उलझन थी। एक ही नाम के तो दुनिया में सैकड़ों लोग होते हैं। मगर अंतरात्मा यही गवाह देती थी कि वह तुम ही हो। फिर जब तुम्हारा उत्तर नहीं आया तो मैं निराश सी हो गई। स्वयं पर खीझ गई। क्यों एक अनजान पुरुष को इस तरह का खत लिख बैठी? यहां आकर भी मैं निश्चय कर बैठी थी कि उस कहानी का लेखक तुम्हारा नामधारी कोई और व्यक्ति होगा। इसलिये मिलने की कोशिश करना बेकार ही है। किंतु रात कुछ ऐसी बातें हो गई कि मेरा दिल फिर गवाह देने लगा कि तुम ही उस कहानी के लेखक हो। और तुम ताज्जुब करोगे कि पन्द्रह साल बाद भी मैंने तुम्हें दूर से ही पहचान लिया था।'

मैं बीच में ही टोक बैठा, 'ऐसी क्या बात हो गई रात में।'

वह कुछ क्षेंपी और फिर कहने लगी 'मैंने कहा था दिल्ली बहुत बड़ा शहर है। यहां कई नामीं गिरामी डाक्टर हैं। किसी से सलाह लीजिये, दिखवा लीजिये। इसी पर वे उबल पड़े थे, 'तुम तो हमेशा एक ही रट लगायी रहती हो, एक ही बात के पीछे पड़ी रहती हो। धिक्कारती तो ऐसी हो जैसे मैंने तुम्हें कुछ दिया ही नहीं। तुम्हारे पास क्या नहीं है? जरा किसी और से तुलना कर के देखो तो तुम्हारे पास कितनी कीमती साड़ियों है, गहने हैं—जेवर जेवरात हैं। सिर्फ एक चीज नहीं दे सका तो उसके लिये हमेशा ताने मारती रहती हो।' होटल का कमरा था। वे चिल्ला चिल्लाकर बोलने लगे थे। मुझे यह बड़ा भद्दा सा लगा। उस समय चुप रह जाना ही बेहतर था। उन्हें नीद आ गई थी, किंतु मेरी आंखों में नींद के बजाय आंसू आ गये थे। गाल आंसूओं से तर हो गये। 'हां कीमती गहनों की पोटलियों से अपनी सूनी कोख को भर लूंगी। कीमती साड़ियों का गुड़िया बनाकर अपनी उफनती छाती से लगा लूंगी!! मामा के लड़के को गोद लेकर तुमने कारोबार का, सम्पत्ति का उत्तराधिकार घोषित कर दिया—मगर मैं अपना ममत्व किसे सौंपूं। नारी

तो सर्जक होती है...मैं तो बंजर बन गई!!'

मुझे स्वयं पर ग्लानि सी हुई कि अपने ही दुख दर्द के ख्यालों में डूबा मैं औपचारिकता वश भी न पूछ सका कि बच्चे? मैं तो यही सोच रहा था कि बच्चे अपनी दादी मां के पास होंगे। घूमने आयी है तो बच्चों को साथ लेकर घूमने का मजा ही क्यों किरकिरा कर दे।

बोलती बोलती वह परेशान सी हो गई। बेचैनी की असंख्य रेखायें उसके चेहरे पर खेलने लगी। वह अपनी बेचैनी को छिपाने की कोशिश करने लगी। मगर छिपा नहीं सकी। कुर्सी से उठ खड़ी हुई और बोली, 'अब मैं यदा कदा आती जाती रहूं तो तुम बुरा तो न मानोगे? पत्र का जवाब दोगे न?' गुलदस्ते की ओर इशारा करती बोली, 'तुम्हें गुलाब पसन्द है न? इसलिये ले आयी।'

वह सीढ़ियां उतरने लगी। मैंने गौर से देखा—सीढ़ियां उतरते वक्त वह लड़खड़ाने लगी थी। यह लड़खड़ाहट उसकी भरी पूरी देह से स्पष्ट झलकने लगी थी। फिर भी 'बाई' कहती हुई टैक्सी में बैठ गई थी।

ऊपर आकर मैं गुलाब के फूलों को सूंघने लगा था। देखा तो गुलदस्ते के बीचों बीच एक पर्ची पड़ी थी, 'अब गुलाब नहीं गमकेगा?'